संशोधनों से कमजोर हुआ सूचना का अधिकार P18

बाड़मेर ने समझी बेरियों की अहमियत P26

नीति राजनीतिः असम में बाढ़ P46

सितंबर 2019

डाउन टू अर्थ

पर्यावरण • विकास • स्वास्थ्य... हर महीने

₹50

बंजर मंजर

भारत में तेजी से बढ़ता मरुस्थलीकरण कितना बड़ा संकट, क्या हैं चुनौतियां?

CERTIFICATE COURSE ON

INTEGRATED WASTE MANAGEMENT

Rapid urbanization and rising consumption of goods make waste management in India a massive challenge. Urban India produces 62 million metric tonnes (MMT) of municipal solid waste every year, 70 per cent of which is collected and only 25 per cent of this collected waste is processed. Figures for recycling are abysmal; for instance, out of 25,940 tonnes of plastic waste generated per day, only 15,564 tonnes gets processed; similarly 95 per cent of e-waste is managed by the informal sector, which is a huge concern.

The need of the hour is to shift the focus towards source segregation, recycle and reuse. This will further strengthen and foster 'Circular Economy' by creating and optimizing resource 'loops' along value chains and will ensure sustainable consumption and production patterns into waste management systems.

The Centre for Science and Environment (CSE) has been working on policy and implementation with regard to waste management at the national and global levels. The Anil Agarwal Environment Training Institute (AAETI), a CSE initiative, recognizes the need to adopt resource efficient waste management regimes, and offers an advanced five-day training programme on 'Integrated Waste Management'. The objective of the programme is to provide a better understanding of the key aspects of management of solid, plastic, biomedical, construction and demolition (C&D) and e-waste; feasibility of technologies involved in their treatment; regulatory frameworks; best practices and stakeholders involved.

COURSE HIGHLIGHTS

- Status of waste management in India
- Major provisions of the Waste Management Rules, 2016 and its amendments
- Utilization of the concept of circularity and resource efficiency in different waste streams
- Extended Producer Responsibility (EPR)
- Developing decentralised waste management frameworks
- Using information, education and communication for behaviour change
- National and international best practices
- Site visits

WHO CAN APPLY

Waste management practitioners, officials from central and state urban departments and municipalities, urban and town planners, village panchayat officials and members, academicians, students, and NGO representatives.

TRAINING METHODOLOGY
Classroom lectures, case studies, class exercises, discussions and field visits

COURSE FEES
25,500/- INR
(for double occupancy accommodation)
35,000/- INR
(for single occupancy accommodation)
(Includes Tuition fee, Course material, Boarding and lodging, Transport from New Delhi to AAETI and back)

FACULTY
Experts from MoEF&CC, CPCB, Technical experts, CSE and other Civil society institutions

COURSE DURATION
September 10-14, 2019

LAST DATE FOR APPLYING
07 September, 2019

COURSE VENUE
Anil Agarwal Environment Training Institute (a Centre for Science and Environment initiative), Nimli (near Alwar), Tijara, Rajasthan

COURSE COORDINATORS:

Dinesh Raj Bandela, Deputy Programme Manager
Environmental Governance; Ph: 91-11-40616000 (Ext. 384)
Mobile:+91-8800721020; Email: dinesh.bandela@cseindia.org
Centre for Science and Environment

Rashmi Shrivastav, Research Associate
Environmental Governance; Ph: 91-11-40616000 (Ext. 387)
Email: s_rashmi@cseindia.org
Centre for Science and Environment

सुनीता नारायण

नई जलवायु में "पराए"

मैं आपके साथ एक तस्वीर साझा कर रही हूं, जो मुझे भयाक्रांत कर रही है। हम एक कमरे में बंद कर दिए गए हैं। उस कमरे की खिड़की की बेहद पतली फांक से हम देख सकते हैं कि बाहर की आबोहवा बेहद खराब हो चुकी है। दावानल धधक रहा है, हीटवेव है, बेतहाशा बारिश और आंधी चल रही है। सब कुछ बिल्कुल अनुमान के अनुरूप ही हो रहा है। मगर हमारी चींखें सुनी नहीं जा रही हैं, जैसे कि ये सब कहीं और हो रहा है या फिर ये सच ही नहीं है।

मैं जानती हूं कि ये सब सुनने में अति-नाटकीय लग रहा है। लेकिन, ये कटु सत्य है। पृथ्वी के गर्म होने से आबोहवा में बदलाव का असर हमारे सामने हो रहा है, यह हम देख ही रहे हैं। लेकिन, व्यापारिक लड़ाई, अर्थव्यवस्था (अच्छी या बुरी), राष्ट्रवाद, युद्ध और अन्य मुद्दे हमारे लिए बेहद अहम हो गए हैं। कभी लगता था कि मानव इतिहास के बुरे से बुरे दौर में भी जलवायु परिवर्तन नहीं हो सकता, मगर ये हो रहा है। सीधी-सी बात है कि हमारे पास इससे निपटने का मनोबल ही नहीं है और यहीं से ये साफ हो जाता है कि चीजें नियंत्रण से बाहर जा रही हैं। हर साल नए वर्ष के पहले हमें बताया जाता है कि ये साल सबसे गर्म है। फिर दूसरा साल आता है और पहले का रिकॉर्ड तोड़ देता है। हालात बद से बदतर हो रहे हैं। हम ये जानते हैं। सुनते भी हैं और अब तो हम इसे महसूस भी कर सकते हैं।

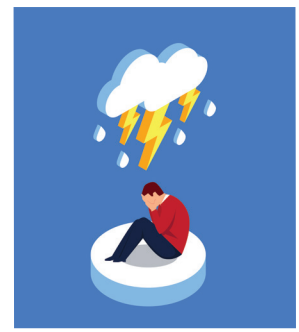

हमें यह समझने की जरूरत है कि उत्तरजीविता के हाशिए पर जी रहे लोगों के लिए अस्तित्व के संकट का मतलब क्या है? ये जगजाहिर बात है कि हर खराब होता मौसम, चाहे बाढ़ हो या फिर सूखा, लोगों को काम-धंधे के लिए पलायन करने को मजबूर कर देता है। ये मौसम उन्हें घर से बाहर निकलने को विवश करते हैं। पलायन कभी अस्थायी होता है तो कभी सदा के लिए। लेकिन अब जलवायु परिवर्तन ऐसी स्थिति में पहुंच गया है कि इसके बुरे परिणाम ही आएंगे।

लेखक अमिताभ घोष अपने उपन्यास *गन आइसलैंड* में विस्थापितों की कई पीढ़ियों के सफर के बारे में बताते हैं। खराब आबोहवा ने लोगों को पूर्व में और अब भी जीवनयापन के नए साधनों की खोज में पलायन को मजबूर किया है। पलायित लोग हमेशा से बदलाव का मानवीय चेहरा रहे हैं, वह चाहे अच्छा हो या बुरा।

यह भी सच है कि पलायन केवल मजबूरी में नहीं होता, बल्कि कई बार ये बेहतरी के लिए आकर्षित भी करता है। क्योंकि जहां हम नहीं होते हैं, वह जगह हमें ज्यादा अच्छी लगती है। मौजूदा समय में पूरी दुनिया एक-दूसरे से जुड़ी है, इसलिए खतरा हर जगह एक समान है। अव्वल तो जलवायु को बिगाड़ने वाला कार्बन डाइऑक्साइड एक देश में उत्सर्जित होता है व वायुमंडल में फैल जाता है। दूसरा यह कि मोबाइल टेलीफोनी की रफ्तार से वैश्विक खबरों को पहुंचाता है। इस संदर्भ में देखें, तो मजबूरी में पलायन और बेहतरी के लिए ऐच्छिक पलायन दोनों बढ़ेगा।

ऐसे में सवाल ये उठता है कि तेज रफ्तार व प्रेरित पलायन को लेकर हमारी प्रतिक्रिया क्या हो? कई देशों में तो पलायन वहां की राजनीति की परिभाषा गढ़ रहा है। भारत में हम इस पर बहस कर रहे हैं कि "बाहरियों" की शिनाख्त कैसे की जाए, लेकिन हमें यह नहीं मालूम है कि शिनाख्त करने के बाद इनका करना क्या है। यूरोप में जनता का मूड (चुनाव भी) उन नावों की तस्वीरों से भांपा जा रहा है, जिन पर सवार होकर लोग अवैध तरीके से घुसपैठ कर रहे हैं। अमेरिका में दीवार और मुल्क में दाखिल होने का इंतजार कर रहे लाखों लोगों की तस्वीर सोशल मीडिया और पब्लिक स्पेस में वायरल हो रही है। "आव्रजन" एक सच्चाई है और इसके निपटने में हमारी जो प्रतिक्रिया है, वह न केवल शब्दों में बल्कि काम में भी बुरा असर डाल रही है। यह सामाजिक भय व असुरक्षा की भावना को बढ़ा रहा है। साथ ही साथ नफरत की भावना भर-कर समुदायों का ध्रुवीकरण कर रहा है और राष्ट्रवादी ब्रिगेड को खाद-पानी मुहैया करा रहा है।

जरा सोचिए, जब श्वेत श्रेष्ठवादी ने अमेरिका के टेक्सास के अल पासो में लोगों पर गोलियां चलाईं और उनका कत्ल किया, तो उसने कहा कि वह दुनिया को जलवायु परिवर्तन के कुप्रभाव से बचाने के लिए ऐसा कर रहा है। उसने अपने ब्लॉग पर लिखे लेख (जिसे हटा दिया गया है) में जो निष्ठुर तर्क दिया था, वह यह था कि अमेरिकी अपनी जीवनशैली नहीं छोड़ेंगे। हालांकि, वह यह भी मानता था कि उनकी जीवनशैली ही इस ग्रह को तबाह कर रही है। उसका कहना था, अतिरिक्त लोगों को हटा दिया जाए ताकि अमेरिकी जीवनशैली लंबे समय तक बरकरार रह सके। इसके लिए उनकी हत्या कर दी जाए। उन्हें अमेरिका में प्रवेश से रोका जाए।

पूर्व में मैं इस शेखी को सनक समझकर झुठला दिया करती थी, लेकिन अब हम उस बिंदु तक पहुंच पा रहे हैं, जहां संकट की दो रेखाएं एक-दूसरे को काटेंगी। हालांकि, अभी तक हमारे पास पलायन के असल कारणों का बहुत कम आंकड़ा है। हम जलवायु परिवर्तन के शणार्थियों पर बेहद सपाट तरीके से बात इसलिए करते हैं, क्योंकि हमारे लिए इस समस्या की गंभीरता व प्रकृति को समझना बहुत मुश्किल है।

यह नहीं कहा जा सकता है कि पलायन बुरा है। सच तो ये है कि शहर और देश अस्तित्व में आया ही उन लोगों के कारण जिन्होंने अपना घर छोड़ा और वे नई समृद्धि के निर्माण के लिए अन्यत्र रहने लगे। हम जानते हैं कि भारत में आंतरिक पलायन रोजगार के खेल का नाम है। हर इलाके में आपको ऐसे लोग भारी संख्या में मिल जाएंगे, जो ऐसे क्षेत्र से आते हैं जहां बाढ़ या सूखे या गरीबी का कहर है। या फिर वह इसलिए दूसरी जगहों पर चले जाते हैं कि उन्हें नए अवसरों की उम्मीद है। देश के हर शहर में अलग-अलग क्षेत्रों के लोग, भाषाएं और खानपान मिलते हैं। लेकिन अब ये पराकाष्ठा की ओर पहुंच रहा है। हमें नहीं पता है कि भारत के भीतर ही कितने लोग दीर्घकालिक व अल्पकालिक पलायन कर रहे हैं क्योंकि इसको लेकर आखिरी बार जनगणना एक दशक पहले हुई थी। लेकिन शहरों में अवैध व सरकार की अनुमति के बिना स्थापित हो रही बस्तियों से साफ है कि नए लोगों (पलायन करनेवालों) की संख्या काफी ज्यादा है। इससे राजनीति पर क्या असर पड़ेगा, निवास स्थान आरक्षण से लेकर पालायितों की गिनती तक में ये अब साफ नजर आने लगा है। इससे हालात और भी खराब होंगे।

मैं इस लेख को निर्णायक अंत दिए बिना ही खत्म कर रही हूं। मेरे पास कोई उपसंहार नहीं है। लेकिन, मैं इतना जरूर मानती हूं कि ये सही वक्त है कि मानव को होने वाले नुकसान को ध्यान में रखते हुए हम जलवायु के खतरों की असल प्रकृति पर विमर्श करें।

इस अंक में

30 **आवरण कथा**
भारत का व्यापक क्षेत्रफल मरुस्थलीकरण से गुजर रहा है, क्या हैं इसके मायने, *डाउन टू अर्थ* का विश्लेषण

9 **चर्चा में**

26 **याद आई बेरियां**
राजस्थान के बाड़मेर में परंपरागत जल स्रोत बेरियां हो रही हैं पुनर्जीवित

44 **सीधी बात**
कोलिस्टिन पर प्रतिबंध का स्वागत पर कठिन है आगे का रास्ता

45 **कलादीर्घा**
विकास या विनाश

46 **नीति-राजनीति**
असम में कहर बरपाने पानी वाली बाढ़ इस बार कितनी अलग

48 **बैठे ठाले**
अनजाना डर

49 **बूंदों की संस्कृति**
कारगर थी दिल्ली की परंपरागत जल व्यवस्था

58 **अंततः**
गरीबी दूर होगी, बशर्ते...

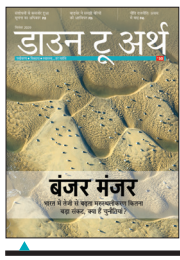

आवरण डिजाइन अजीत बजाज

16
संकट का पता
मनरेगा के रियल टाइम आंकड़े क्या इस संकट को समझने में मदद कर सकते हैं

18
दंतहीन कानून
आरटीआई में संशोधन सूचना आयुक्तों की स्वायत्तता पर हमला

56
आहार संस्कृति
पहाड़ी इलाकों में धुरचुक की धाक

गोबर टाइम्स
कितना पानी बर्बाद करते हैं हम
54

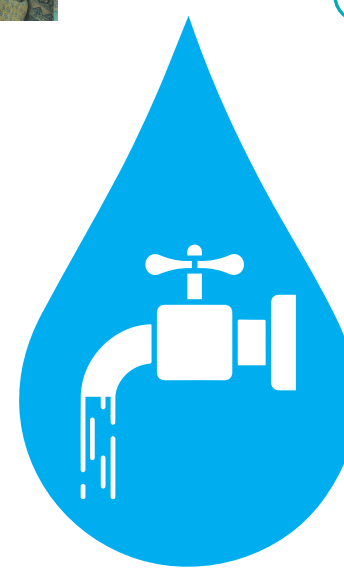

डाउन टू अर्थ

संस्थापक संपादक अनिल अग्रवाल

संपादक सुनीता नारायण

प्रबंध संपादक रिचर्ड महापात्रा

वरिष्ठ सहायक संपादक अनिल अश्विनी शर्मा

वरिष्ठ उपसंपादक भागीरथ

वरिष्ठ संवाददाता राजू सजवान

संवाददाता विवेक मिश्रा

क्रिएटिव डायरेक्टर अजीत बजाज

ग्राफिक संपादक सोरित गुप्तो

रिपोर्टिंग टीम
जितेंद्र चौबे, कुंदन पांडेय, ईशान कुकरेती, मीनाक्षीसुषमा, अक्षित संगोमला, बनजोत कौर, शगुन कपिल

सूचना एवं शोध सहयोग किरण पांडे
www.indiaenvironmentportal.org.in टीम

सहायक कला संपादक चैतन्य चंदन, संजीत कुमार

डिजाइन टीम
श्रीकृष्ण, विजयेंद्र प्रताप सिंह, तारिक अजीज, रितिका बोहरा

फोटो पत्रकार विकास चौधरी

फोटो लाइब्रेरी अनिल कुमार

हिंदी सहयोग
सुरेंद्र सिंह, जयदेव शर्मा, ललित मौर्य, दयानिधि मिश्रा

प्रोडक्शन राकेश श्रीवास्तव, गुंधर दास

संपादन परामर्श
चंद्र भूषण, अनुमिता रायचौधरी, विभा वार्ष्णेय

विज्ञापन संपर्क ज्योति घोष
jghosh@cseindia.org

सब्सक्रिप्शन संपर्क केसीआर राजा
raja@cseindia.org

वर्ष 1, अंक 11, कुल पृष्ठ 60
सम्पादकीय, सब्सक्रिप्शन और विज्ञापन : सोसायटी फॉर एनवारनमेंटल कम्यूनिकेशंस, 41-तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110062
फ़ोन : +91-11-29955124, 29956110, 29956394, 29956399
फ़ैक्स : +91-11-29955879
ई मेल : editor@downtoearth.org.in

© 2019 सोसायटी फॉर एनवारनमेंटल कम्युनिकेशंस सर्वाधिकार सुरक्षित (पूरे विश्व के लिए)। किसी भी प्रकार से पुनः उत्पादन प्रतिबंधित।

सोसायटी फॉर एनवारनमेंटल कम्युनिकेशंस के लिए रिचर्ड महापात्रा द्वारा प्रकाशित और मुद्रित। तारा आर्ट प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड, ए-46-47, सेक्टर-5, नोएडा-201301, उत्तर प्रदेश से मुद्रित और 41-तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110062 से प्रकाशित।

सब्सक्राइब करने के लिए फोन करें
011-4061 6000 पर
या लॉग इन करें **www.downtoearth.org.in/subscribe**

डाउन टू अर्थ संपादकीय पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की किसी भी विषयवस्तु का समर्थन नहीं करता है। सभी विवाद सिर्फ दिल्ली/नई दिल्ली के प्रतिस्पर्धी न्यायालय और फोरमों के विशिष्ट न्यायाधिकार का विषय है

चिट्ठी पाती

मेरी जुबानी

जैविक खेती

मीरा देवी
झज्जर, हरियाणा

मेरे 65 बसंत पार हो गए और अब इस जिंदगी में जमीदारों के घरों में खटते-खटते यह तो सपने में भी नहीं सोचा था कि कभी हम अपने खेतों पर भी काम कर इतना कमा लेंगी कि अपनी पोती की शादी धूमधाम से कर सकें। लेकिन कहावत है न "जहां चाह वहां राह"। यह भी शास्वत सत्य है कि उम्र बस एक संख्या है। यदि आपने ठान लिया कि यह करना है तो फिर कोई भी आपको नहीं रोक सकता। पास-पड़ोसी यह कहते नहीं थकते कि यह उम्र तो पोते-पोतियों को खिलाने की है। लेकिन इस ढलती उम्र में भी मैंने कुछ कर गुजरने की सोची कि अब तो पक चुकी हूं, अब तो कोई भी खतरा उठा सकती हूं। और आखिरकार दिन-रात 18-18 घंटे तक जमीदारों के यहां खटने की जगह अपनी राह स्वयं चलने की सोची। सात साल पहले (2013) अपने बहुजोली गांव (झज्जर, हरियाणा) में अपनी ही तरह जमीदारों के यहां चाकरी करने वाली एक दर्जन से अधिक महिलाओं को संगठित किया और एक स्वयं सहायता समूह बनाया। हालांकि जमीदारों के यहां काम करने वाली महिलाओं को इस काम के लिए राजी करना आसान नहीं था। दशकों की गुलामी से निकलना इतना आसान नहीं होता। मैंने तो अपने मन को समझा लिया लेकिन यही बात दूसरों को समझाना टेढ़ी खीर थी। अधिकांश महिलाएं कहती थीं कि हमने यदि खेत जैसे-तैसे लीज (पट्टा) पर ले भी लिया लेकिन ये बाहुबली हमें खेती नहीं करने देंगे। ज्यादातर औरतों को डर सता रहा था कि कहीं ऐसा न हो कि हमें जो भी रूखा-सूखा निवाला मिल रहा है, वह भी न छिन जाए। इस डर को खत्म करने के लिए मैंने औरतों से कहा कि देखो जब तक हम डरते रहेंगे तब तक यूं ही दूसरों के टुकड़ों पर पलते रहेंगे। आप और हम देख ही रहे हैं कि हमारे बच्चे और अब उनके बच्चे भी दूसरों के ही खेतों को फलने-फूलने के लिए अपनी पूरी जिंदगी खपा दे रहे हैं। क्यों न हम जितनी मेहनत दूसरों के खेतों को आबाद करने में करते हैं, उतनी ही मेहनत अपने ही खेतों में करें। जहां तक खेत लेने की बात है तो इस बारे में मुझे जानकारी मिली है कि सरकार गांव की पंचायत की जमीन उन्हें लीज पर सौंपती है, जिन्होंने स्वयं सहायता समूह बनाया हो। तुम तो सब मुझसे 20-25 साल छोटी हो और मेरी जैसी उम्रदराज महिला जिसका एक पैर कब्र में लटक रहा हो, वह जब यह सब करने को तैयार है तो तुम्हें किसका डर? यही नहीं मैंने अपनी साथियों से यह भी कहा कि मान लो यदि हम सफल नहीं हुए तो फिर तो हम अपने पुराने काम में लौट ही सकते हैं। इस गांव का जमींदार न सही, दूसरे गांव का सही। आखिरकार इन महिलाओं की हिम्मत बंधी। इस हिम्मत का नाम हमने मिलकर रखा "स्वामी स्वयं सहायता समूह"। कहा जाता है कि जब आप स्वयं चलने के लिए तैयार हों तो कोई न कोई आगे आ ही जाता है। ऐसा ही मेरा साथ भी हुआ। हमारे समूह पर हरियाणा राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन के अधिकारियों की नजर पड़ी। मिशन ने पंचायत की चार एकड़ जमीन खेती के लिए लीज पर दिलाई। इसके बाद शुरू हुई हमारी असली परीक्षा। लेकिन अपनी साथी महिलाओं के साथ मिलकर हमने इस जमीन पर ऐसी खेती करने की सोची, जिसमें रत्तीभर भी रासायनिक खाद न पड़े। बस फिर क्या था, समूह की महिलाओं ने गेहूं और कपास की खेती शुरू की। एक साल में वे खेतों से दो फसल लेते हैं। चूंकि गांव में ही बनिए हमारी कपास खरीद लेते हैं तो हमें किसी प्रकार का परिवहन खर्च नहीं उठाना होता। कपास की दर 5,250 रुपए प्रति क्विंटल में बिकती है। और एक एकड़ में लगभग छह क्विंटल कपास होती है। इसी प्रकार गेंहू की दर भी 1,840 रुपए प्रति क्विंटल है। हमारे समूह में काम करने वाली महिलाओं को सालाना 35 से 50 हजार रुपए की आमदनी हो जाती है। चूंकि हमारी फसल में रासायनिक खाद नहीं मिली होती है तो गांव के दूसरे लोग भी हम से ही गेहूं खरीद लेते हैं। हमें बाजार या आढ़तियों का चक्कर नहीं लगाना पड़ता।

यह पाठकों का मंच है। अपने विचार और सुझाव आप *डाउन टू अर्थ* के साथ साझा कर सकते हैं। हमें लिखें: editor@downtoearth.org.in

टेढ़ी-खीर

आपकी पत्रिका कहने के लिए तो बहुत ही अच्छी है लेकिन पिछले एक साल से इसे पाने में पसीने छूट जाते हैं। पहले मैं स्टॉल से ही ले लेता था, लेकिन यदि पत्रिका के बुक स्टॉल पर आने के समय मैं नहीं पहुंच पाया, तो मिलती नहीं थी। ऐसे में मैंने इसे ऑनलाइन मंगाने का फैसला किया। लेकिन ऑनलाइन आने में भी यह बहुत देर से मिलती है। मेरी ही नहीं मेरे जैसे कई अन्य सुधी पाठकों को भी यह सोच कर कोफ्त होती है कि हम पढ़ने के लिए मर रहे हैं और पत्रिका नसीब नहीं हो रही है। हर हाल में इसका हल संपादक मंडल को निकालना चाहिए। उम्मीद है हमें भविष्य में पत्रिका आसानी से उपलब्ध होगी। मुझे यह बताते हुए खुशी हो रही है कि इस पत्रिका की मांग तेजी से बढ़ रही है। विशेषकर प्रतियोगी परीक्षाओं में भाग लेने वाले छात्र-छात्राओं के बीच इसकी अधिक मांग है। कारण यह है कि *डाउन टू अर्थ* में विज्ञान संबंधी आलेख जो हम पढ़ते हैं वह हमें न तो किसी वेबसाइट पर और न किसी दूसरी अंग्रेजी या हिंदी पत्रिका में पढ़ने को मिलते हैं। बस आप इसे पाठकों तक नियमित रूप से पहुंचाने की जरूरी व्यवस्था करें।

महेंद्र सिंह परिहार, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

संपादक का जवाब

महेंद्र जी आपकी शिकायत पूरी तरह से जायज है। इस संबंध में हमने अपने संबंधित विभाग को सूचित किया है। आपकी शिकायत को यथा संभव दूर करने की हम अपनी ओर से भरसक कोशिश करेंगे। धन्यवाद कि आपने पत्रिका की तारीफ करने के साथ अपनी वाजिब शिकायत भी दर्ज कराई। आखिरकार यह पत्रिका हम आप जैसे पाठकों के लिए ही प्रकाशित कर रहे हैं।

एक नक्शे में सब कुछ

आपके चर्चा वाले कॉलम में मानचित्र वाला हिस्सा मुझे बहुत ही उपयोगी लगता है। देशभर में स्लम बस्ती को आपने एक नक्शे में दिखाकर वह काम कर दिया जो सैकड़ों पेज लिख कर कोई लेखक नहीं कर पाता। इसके अलावा अतीत वाला हिस्सा भी हमें बहुत भाता है। इन कॉलम को हर हाल में नियमित रखिए और इसमें किसी प्रकार का गैप नहीं कीजिए। यही हमारा आपसे विनम्र आग्रह है।

एके सिंह, पटना

पुरुषोत्तम ठाकुर

सच्चाई यही है

पहली बार छत्तीसगढ़ के बैलाडीला पर इतनी अच्छी रिपोर्ट देखी और पढ़ी। मैं यहां का हूं तो जानता हूं कि यहां के समाचार पत्र क्या छाप रहे थे। पहली बात तो यह कि उन्होंने पहले तो इसे तवज्जो ही नहीं दी। इस खबर को पाने के लिए मैंने तमाम वेब साइटें खगालीं लेकिन कहीं नहीं मिला। आखिरकार जब *डाउन टू अर्थ* की वेबसाइट पर गया तो हर दिन की खबर मिली। सचमुच में यह एक बड़ा आंदोलन था, जिसे कोई प्रकाशित नही कर रहा था। जबकि इससे हजारों आदिवासियों की जिंदगियां जुड़ी हुई थीं। मैं इस आंदोलन के शुरू होने के 4-5 दिनों तक बस अपने संपर्क सूत्र के दम पर ही वहां की खबरें जान पा रहा था। स्थानीय समाचार पत्रों ने इस खबर को लगभग चार-पांच दिन बाद देना शुरू किया, वह भी ऐसी जगह पर जहां आपको ढूढ़ना पड़े। सच में यह आदिवासियों की कारपोरेट पर एक बड़ी जीत है।

नित्यव्रत राय, कुम्हारी, छत्तीसगढ़

अच्छी स्टोरी

गन्ने का गणित स्टोरी पढ़ी। सच में यह एक जमीन हकीकत है। इन बातों को हर कोई जानता है, लेकिन इसके बारे में पहल करने से कतराता है। इसमें हर पहलू की गहराई से जांच-पड़ताल कर रिपोर्ट लिखी गई है। इसके अलावा जिन विशेषज्ञों से बातचीत की गई है, वे अपने क्षेत्र के जाने माने नाम हैं और उन लोगों ने भी इस स्टोरी की सच्चाई को और मजबूती प्रदान की है।

एस निमसरकार, अमरावती, महाराष्ट्र

हर जगह पर हो

आपकी पत्रिका इस समय अच्छी सम-सामायिक व पाठनीय सामग्री छाप रही है। लेकिन इसमें एक ही बात की शिकायत है कि इसे आराम से पा लेना अपने आप में एक बड़ा काम है। सेंट्रल दिल्ली में सड़क किनारे स्टॉल लगाने वाला हॉकर दो-तीन प्रति रखता है और हर बार जब तक पहुंचता हूं, वह बिक चुकी होती है। आग्रह है कि इसका हल शीघ्र निकालें। इसका हमें पूरा विश्वास ही नहीं पूर्ण आशा है।

एस राय, दिल्ली

डाउन टू अर्थ

पत्रिका के बारे में अपने सुझाव आप इस पते पर भेज सकते हैं-

सुनीता नारायण,
संपादक, डाउन टू अर्थ,
41, तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली-110062

आप हमें ई मेल भी कर सकते हैं:
editor@downtoearth.org.in

यहां भी हमसे जुड़े रहिए

@down2earthHindi | http://www.downtoearth.org.in/hindistory

वक्तव्यों से परे...

पर्यावरण और विकास पर भारत की बहुप्रतीक्षित पत्रिका **अब हिंदी में भी**

पर्यावरण और विकास से जुड़े मुद्दों को समर्पित पत्रिका 'डाउन टू अर्थ' के 25 साल पूरे होने पर हमें इसके हिंदी संस्करण की शुरुआत करते हुए बेहद खुशी है। यह नई पत्रिका विकास, पर्यावरण और स्वास्थ्य की राजनीति से संबंधित ऐसी जमीनी रिपोर्ट, खबरें और तथ्यपूर्ण लेख आप तक पहुंचाएगी जो आपके लिए सबसे ज्यादा मायने रखते हों। हम आशा करते हैं कि 'डाउन टू अर्थ' के अंग्रेजी संस्करण की तरह ही हिंदी पत्रिका भी केंद्र और राज्य सरकारों के नीति निर्धारकों को व्यापक जन हित में फैसले लेने के लिए बाध्य करेगी। पत्रिका में मौलिक रिपोर्टों के अलावा पर्यावरण से जुड़े साहित्य, लोक संस्कृति और इतिहास से संबंधित सामग्री को भी जगह दी गई है।

'डाउन टू अर्थ' हमारे सरोकारों और जुनून का नतीजा है। हमारा लक्ष्य आप तक उन मुद्दों को पूरे तथ्यों के साथ पहुंचाना है, जो हमारे वर्तमान और भविष्य पर असर डालते हैं। इस मुहिम में हमें आपके सहयोग की जरूरत है। आपसे अनुरोध है कि आप 'डाउन टू अर्थ' के हिंदी संस्करण को हर महीने खरीदकर हिंदी में पर्यावरण और विकास को समर्पित स्वतंत्र पत्रकारिता को अपना सहयोग प्रदान करें।

डाउन टू अर्थ

सब्सक्रिप्शन फार्म

सब्सक्राइबर का नाम : श्री/श्रीमती/सुश्री_____ संस्थान : _____

पता : कार्यालय ☐ निवास ☐ _____ राज्य : _____ पिन कोड ☐☐☐☐☐☐

फोन/मोबाइल : ☐ कार्यालय ☐ निवास _____ फ़ैक्स : _____ ईमेल : _____

मैं इस आवेदन के साथ रुपये_____ ☐ नक़द / ☐ मनी ऑर्डर/चेक/डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से भुगतान कर रहा हूं। कृपया मुझे डाउन टू अर्थ के लिए सब्सक्रिप्शन प्रदान करें।

चेक/डिमांड ड्राफ़्ट संख्या ☐☐☐☐☐☐☐ तिथि_____ (चेक/डिमांड ड्राफ़्ट **Society for Environmental Communications** के नाम नई दिल्ली में भुगतेय होगा)

पत्रिका मंगाने के लिए कॉल करें 011-40616000 (एक्सटेंशन-234) या ईमेल करें dte@cseindia.org

डाउन टू अर्थ सब्स्क्रिप्शन दर (1 अक्टूबर 2016 से लागू)			
	मूल्य (@ ₹50)	आपकी बचत	भुगतान करें सिर्फ
3 साल (36 अंक)	₹1,800	50%	₹900
2 साल (24 अंक)	₹1,200	45%	₹660
1 साल (12 अंक)	₹600	40%	₹360

पूरी तरह से भरे हुए सब्सक्रिप्शन फार्म यहां भेजें:

सोसायटी फ़ॉर एन्वायरॉन्मेंटल कम्यूनिकेशंस
41-तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110062
dte@cseindia.org

बात निकलेगी तो...

विकास चौधरी / सीएसई

“बाढ़ का जलवायु परिवर्तन से कोई लेना देना नहीं”

प्रकाश जावड़ेकर

केंद्रीय पर्यावरण व जलवायु परिवर्तन मंत्री

क्या कहा

केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र सहित देश के नौ राज्य बाढ़ की विभीषिका से जूझ रहे हैं। 2019 में अब तक भारत में एक भी महीना ऐसा नहीं गुजरा, जिसमें मौसम के प्रतिकूल हालात न दिखे हों। वैश्विक स्तर पर भी मौसम के तेवर कमोबेश ऐसे ही रहे हैं। लेकिन, अफसोस की बात ये रही कि देश के केंद्रीय पर्यावरण व जलवायु परिवर्तन मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने इसे सीधे तौर पर नकार दिया। इसके उलट, दीगर मुल्कों में जलवायु परिवर्तन के चलते मौसम की चाल में आए अभूतपूर्व बदलाव को लेकर विज्ञानी एक के बाद एक वैज्ञानिक शोध प्रकाशित कर रहे हैं।

अध्ययन

वर्ष 2009 के बाद से विज्ञानियों ने हर वर्ष को रिकॉर्ड तोड़नेवाले मौसमी बदलावों के वर्ष के रूप में घोषित किया है। मौसमी बदलाव के लिए क्या जलवायु परिवर्तन जिम्मेवार है? विकसित हो रहे एट्रिब्यूशन साइंस (संबंध विज्ञान) से हालांकि कुछ जवाब मिल सकते हैं। विज्ञानियों का कहना है कि जलवायु के संबंध में सही पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता। आईआईटी मुंबई की एट्रिब्यूशन साइंस की विशेषज्ञ अर्पिता मंडल कहती हैं, “मौसम ऐसी व्यवस्था नहीं है, जिसका सही आकलन किया जा सके, इसी वजह से सौ-फीसद अनुमान लगाना संभव नहीं है।”

कहां-कहां

कई देशों ने अपने यहां होने वाले मौसमी बदलावों को जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में देखने की दिशा में जरूरी कदम उठाया है। इस संबंध में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी व यूनाइटेड किंगडम मेटियोरोलॉजिकल ऑफिस ने यूके में हीटवेव, बाढ़ व सूखे जैसे विषम मौसमी गतिविधियों के कारणों को लेकर कई शोध किए। उन्होंने हीटवेव व भारी बारिश को लेकर भारत के साथ भी काम किया। मेलबर्न यूनिवर्सिटी ने हीटवेव व सूखे को लेकर शोध किए हैं। वहीं, जर्मनी भी जलवायु परिवर्तन से निबटने के लिए ऑपरेशनल एट्रिब्यूशन स्टडीज का सहारा लेने जा रहा है।

चर्चा में

बाढ़

1980 से एक करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र पर बढ़ी बाढ़

1953 से 2017 के बीच 64 सालों में 1,07,487 लोगों की मृत्यु बाढ़ और बारिश के कारण हुई है

अग्निमिरह बसू / सीएसई

“...आने वाले वर्षों में हम यह आशा नहीं कर सकते कि हम बाढ़ के खतरों से पूर्णतया सुरक्षित होकर भाग्यशाली स्थिति में आ जाएंगे। हमें एक सीमा तक बाढ़ों के साथ जीवन निर्वाह करना सीखना होगा।” यह व्यक्तव्य का वो हिस्सा है जिसे 27 जुलाई, 1956 को तत्कालीन केंद्रीय योजना और सिंचाई मंत्री गुलजारी लाल नंदा ने लोकसभा में पढ़ा था (स्रोत- बंदिनी महानंदा)। केंद्रीय जल आयोग (सीडब्ल्यूसी) के आंकड़े के मुताबिक, 1953 से 2017 तक कुल 64 वर्षों में बारिश और बाढ़ के कारण 1,07,487 लोगों की मृत्यु हुई है। जान-माल के नुकसान का यह सिलसिला जारी है।

1954 की बाढ़ नीति के बाद 1976 में राष्ट्रीय बाढ़ आयोग (आरबीए) बना। इस आयोग ने 20 मार्च 1980 को अपनी 207 सिफारिशें दीं थी। 40 वर्ष बीत गए लेकिन सिफारिशों पर अमल नहीं हो सका। इसी में एक अहम सिफारिश थी डूब क्षेत्रों को मुक्त कराना। लेकिन सच्चाई है कि उत्तर की गंगा से लेकर दक्षिण की गंगा तक बाढ़ का डूब क्षेत्र सुरक्षित नहीं बचा है। आरबीए ने 1980 में बताया था कि देश के कुल 21 जिलों में 4 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र बाढ़ प्रभावित है, हालांकि अब सरकार के मुताबिक देश के 39 जिलों में करीब 5 करोड़ हेक्टेयर (49.85 एमएचए) भूमि बाढ़ प्रभावित है।

कृषि

आदतों ने जलवायु संतुलन बिगाड़ा

कृषि के प्रति इंसानी दृष्टिकोण ने जलवायु संतुलन को कम करने का काम किया है

जलवायु परिवर्तन पर अंतरसरकारी पैनल (आईपीसीसी) की नई रिपोर्ट में कहा गया है कि कृषि के प्रति इंसानी दृष्टिकोण ने जलवायु संतुलन को कम करने का काम किया है। हालांकि वानिकी लंबे समय से कार्बन सिंक बनाने पर ध्यान दे रही है, लेकिन खाद्य वस्तुओं की खपत, कृषि की आधुनिक प्रणाली और मरुस्थलीकरण ने जलवायु परिवर्तन को बढ़ाया है। आईपीसीसी की यह रिपोर्ट 7 अगस्त 2019 को जारी की गई। रिपोर्ट में कहा गया है कि आबादी बढ़ने, खान पान की आदतों में बदलाव, आय में वृद्धि से 2050 तक खाद्य सिस्टम की वजह से उत्सर्जन में 30 से 40 फीसदी की वृद्धि संभव है।

अग्निमिरह बसु / सीएसई

रिपोर्ट में एक और अतिशय की जानकारी देते हुए कहा गया है कि विश्व में लगभग 2 खरब व्यवस्क लोगों का वजन या तो अधिक है या वे मोटे हैं। बावजूद इसके कुल खाद्य उत्पादन का 25 से 30 फीसदी हिस्सा बर्बाद किया जा रहा है। जो सीधे-सीधे जलवायु को नुकसान पहुंचा रहा है। रिपोर्ट में बताया गया है कि खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) का अनुमान है कि लगभग 4.4 गीगा टन खाने की वस्तुए खराब की गई, जो 2011 में कुल कार्बन उत्सर्जन का आठ फीसदी था। रिपोर्ट में कहा गया है कि खाने पीने की आदत में बदलाव करके 1.8 से 3.4 गीगाटन कार्बन डाईआक्साइड सालाना कम किया जा सकता है।

खानपान पर बहस अक्सर शाकाहारी और मांस की खपत या विभिन्न धर्मों के आधार पर होती है, लेकिन आईपीसीसी ने अपील की है कि इसे आस्था, संस्कृति या धर्म के आधार पर तय नहीं किया जाना चाहिए।

मानचित्र

सूखते नदी बेसिन

मई 2014 से 2019 के बीच भारत के 15 में से 10 नदी बेसिन की जल भंडारण क्षमता कम हुई है

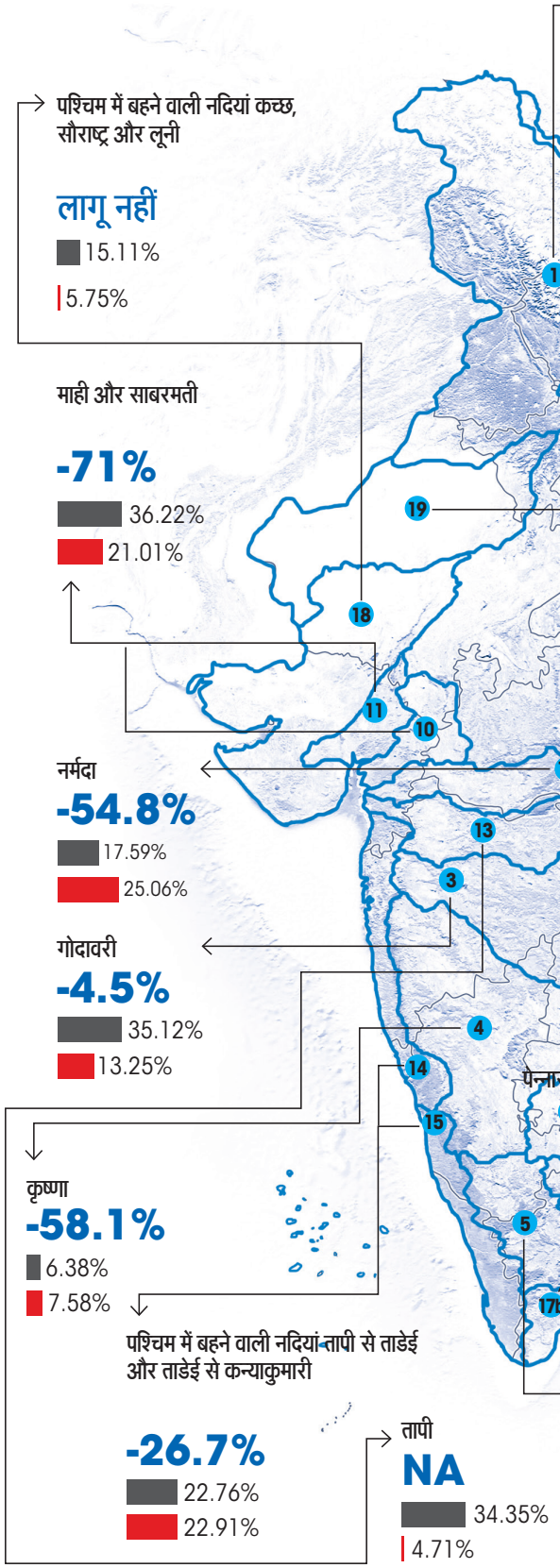

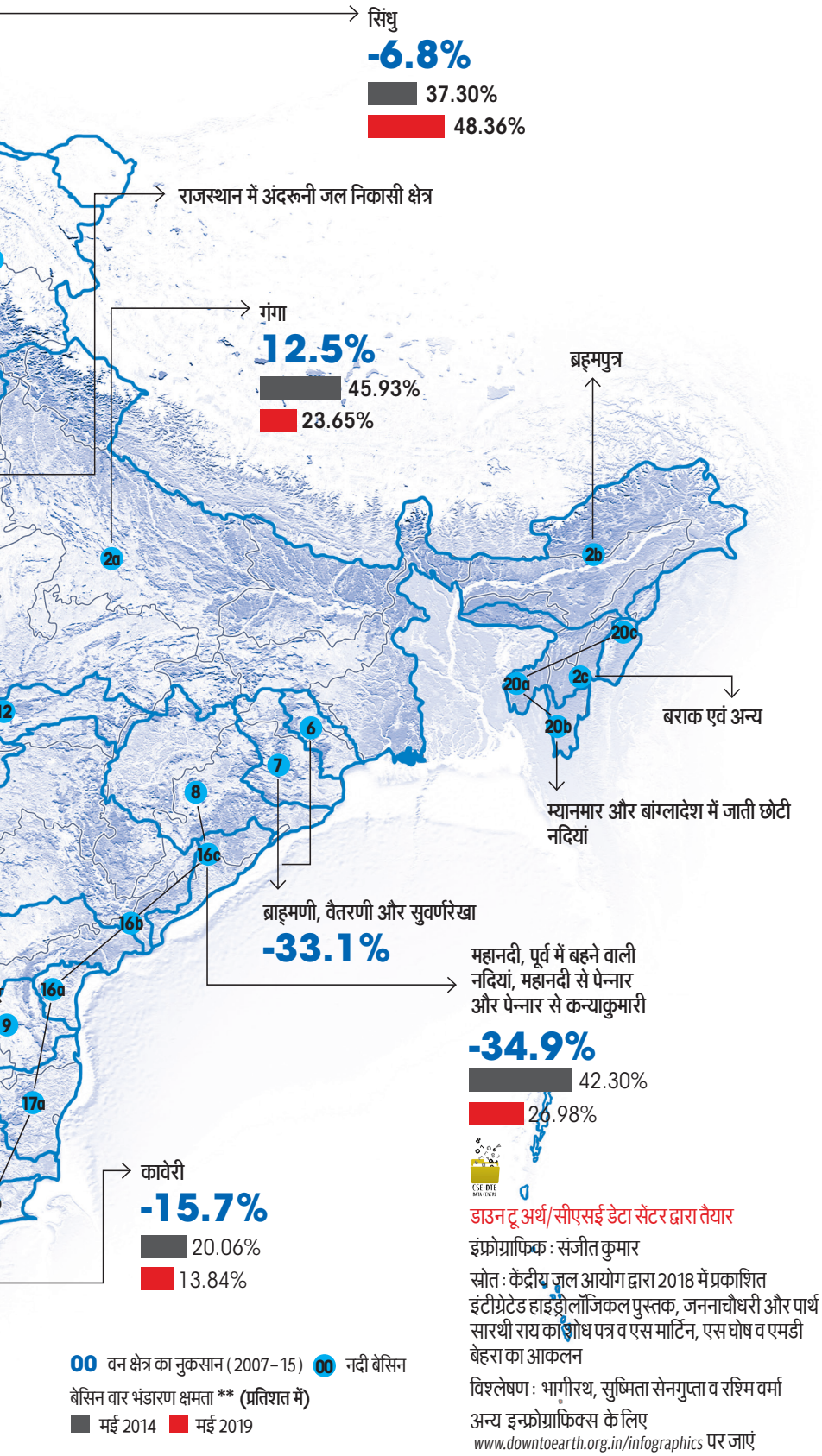

डाउन टू अर्थ/सीएसई डेटा सेंटर द्वारा तैयार

इंफ्रोग्राफिक : संजीत कुमार

स्रोत : केंद्रीय जल आयोग द्वारा 2018 में प्रकाशित इंटीग्रेटेड हाइड्रोलॉजिकल पुस्तक, जननाचौधरी और पार्थ सारथी राय का शोध पत्र व एस मार्टिन, एस घोष व एमडी बेहरा का आकलन

विश्लेषण : भागीरथ, सुष्मिता सेनगुप्ता व रश्मि वर्मा

अन्य इन्फ्रोग्राफिक्स के लिए *www.downtoearth.org.in/infographics* पर जाएं

मानव दखल के कारण नदियों के स्वरूप और बहाव में बहुत परिवर्तन आया है। केंद्रीय जल आयोग द्वारा 2017 में प्रकाशित रिपोर्ट बताती है कि 1984–85 और 2014–15 के बीच सिंधु नदी में 27.78 बिलियन क्यूबिक मीटर (बीसीएम) पानी कम हुआ है। इसी तरह ब्रह्मपुत्र में 95.56 बीसीएम और गंगा में 15.5 बीसीएम पानी कम हुआ है। रिपोर्ट यह भी बताती है कि 2004–05 से 2014–15 के बीच सिंधु नदी के जलग्रहण क्षेत्र (कैचमेंट) में एक प्रतिशत, गंगा के जलग्रहण क्षेत्र में 2.7 प्रतिशत और ब्रह्मपुत्र के जलग्रहण क्षेत्र में 0.6 प्रतिशत की कमी आई है।

गंगा बेसिन देश का सबसे बड़ा नदी बेसिन है। गंगा बेसिन का वन क्षेत्र तेजी से कृषि भूमि और शहरी क्षेत्र में तब्दील हो रहा है। इस कारण बेसिन के मध्य प्रदेश, राजस्थान, झारखंड और पश्चिम बंगाल में स्थित निचले हिस्से बंजर हो रहे हैं। पेड़ों की अंधाधुंध कटाई का नतीजा 1,500 बिलियन क्यूसेक से अधिक पानी के नुकसान के रूप में निकला है। इसी वजह से गंगा की सहायक नदियों में भी पानी का प्रवाह कम हो गया है। सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट के अध्ययन के मुताबिक, 2005–06 से 2014–15 के बीच सोन और रामगंगा का प्रवाह क्रमशः 69 और 55 प्रतिशत कम हो गया है। हिमालय बेसिन पर 2015 में ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ केनबरा के साथ अध्ययन करने वाले प्रकाश सी तिवारी ने पाया था कि कुमाऊं क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों में 45 प्रतिशत, गढ़वाल में 39 प्रतिशत, यमुना जल ग्रहण क्षेत्र में 47 प्रतिशत, हिमाचल प्रदेश में व्यास के जलग्रहण क्षेत्र में 37 प्रतिशत और सिक्किम में तीस्ता नदी के जलग्रहण क्षेत्र में 37 प्रतिशत कमी आई है। इसी कारण ये क्षेत्र सूख रहे हैं और अचानक बाढ़ व भूस्खलन का सामना कर रहे हैं। कर्नाटक के नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी का नेत्रावती नदी बेसिन पर किया गया अध्ययन बताता है कि शहरीकरण से जुड़ी गतिविधियां नदी के जलविज्ञान मापदंडों में बदलाव ला सकता है।

अमेरिका

अमेरिका को अपनी गरीबी दूर करने में लगेंगे 40 साल

संभवत : 2030 तक अमेरिका अपने सतत विकास के 17 लक्ष्यों में से 12 को पूरा नहीं कर सकेगा

संयुक्त राष्ट्र द्वारा सतत विकास के लक्ष्यों (एसडीजी) को अपनाए हुए लगभग पांच साल हो गए हैं, लेकिन अमेरिका 17 लक्ष्यों, जिसमें विशेष रूप से पहले लक्ष्य- गरीबी को समाप्त करने के लिए अभी भी संघर्ष कर रहा है। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने अभी हाल ही में एक साल के भीतर लगभग 10 लाख लोगों को गरीबी रेखा से बाहर निकालने के लिए अपनी सरकार की सराहना की थी । लेकिन अपनी पीठ थपथपाने से पहले शायद वह भूल गए कि उनके देश में अब भी 397 लाख लोग गरीब हैं। यदि ट्रम्प के दावे को सही मानें तो इस रफ्तार से अमेरिका को गरीबी खत्म करने में अभी 40 साल और लगेंगे। अमेरिकी जनगणना ब्यूरो की ताजा रिपोर्ट के अनुसार, 2016 से 2017 के बीच अमेरिका करीब 9 लाख लोगों की गरीबी दूर करने में कामयाब रहा था, लेकिन माजूदा आंकड़ों के अनुसार, वहां गरीबी से त्रस्त लोगों की संख्या अभी भी जस की तस है। वास्तव में हर आठ में से एक अमेरिकी अभी भी आधिकारिक रूप से गरीब हैं, दुर्भाग्य से इस गरीबी में एक-तिहाई बच्चे शामिल हैं।

एस दिलीप रॉय

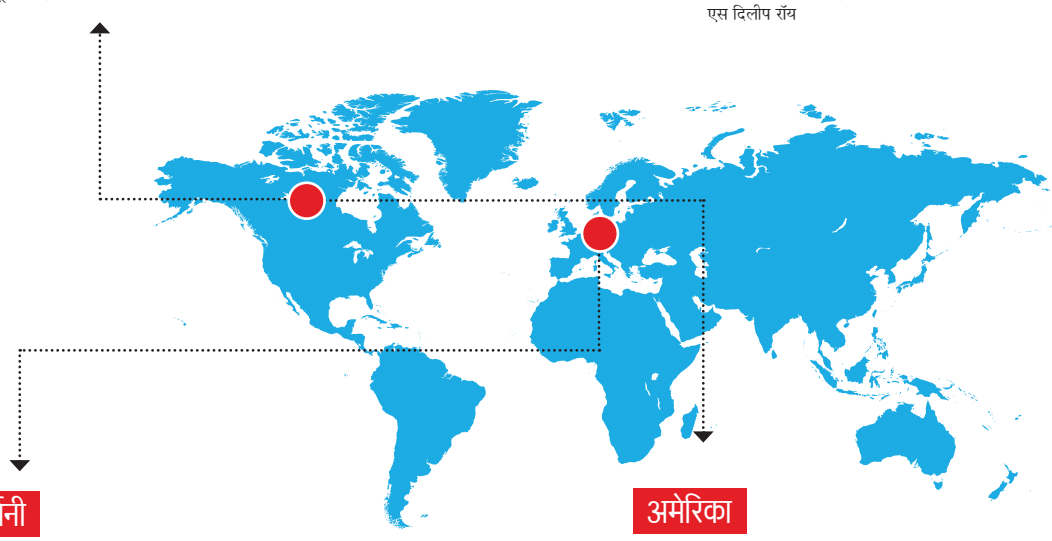

जर्मनी

2050 तक 250 करोड़ के पास एसी

जर्मनी ने 1881 से लेकर अब तक पिछले साल को सबसे अधिक गर्म वर्ष घोषित किया। देश में इस वर्ष 15 फीसदी एयरकंडीशनर की बिक्री बढ़ी है। इंटरनेशनल एनर्जी एसोसिएशन (आईईए) के मुताबिक, 280 करोड़ लोग गर्म देशों में रहते हैं। आईईए के एनर्जी टेक्नोलॉजी पॉलिसी एनालिस्ट जॉन ड्यूलस व एनालिस्ट चियरा डेलमास्ट्रो के ब्लॉग के मुताबिक, विकासशील देशों में 10 फीसदी से कम घर ऐसे हैं, जहां एसी है। जबकि दूसरे ओर, जापान, अमेरिका जैसे देशों में 90 फीसदी घरों में एयरंडीकशनर हैं। साल 2050 तक गर्म देशों में रह रहे लगभग 250 करोड़ लोगों के पास अपना एसी होगा। 2030 तक सब जगह तक बिजली पहुंचने के तरीकों की खोज करने वाले आईईए का सतत विकास परिदृश्य कहता है कि 2050 तक 17.50 करोड़ घरों तक एसी पहुंचने के बाद बिजली की मांग 105 टेरावॉट प्रति घंटा हो जाएगी, इसमें 45 फीसदी हिस्सा एसी की खपत का होगा। चूंकि अभी भी लाखों लोगों तक बिजली नहीं पहुंच पाई है, इसलिए डीजल जनरेटर का इस्तेमाल भी बढ़ेगा। यह सही है कि इससे न केवल कार्बन उत्सर्जन बढ़ेगा, बल्कि घरों का खर्च भी बढ़ेगा।

अमेरिका

दुनिया के 17 देशों पर गंभीर जल संकट

वर्ल्ड रिसोर्स इंस्टिट्यूट (डब्ल्यूआरआई) द्वारा जारी नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार, दुनिया की आबादी का लगभग एक चौथाई हिस्सा गंभीर जल संकट का सामना कर रहा है। पानी का गंभीर संकट झेलने वाले 17 प्रमुख देश अपने क्रम के अनुसार क्रमशः कतर, इज़राइल, लेबनान, ईरान, जॉर्डन, लीबिया, कुवैत, सऊदी अरब, इरिट्रिया, यूएई, सैन मैरिनो, बहरीन, भारत, पाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, ओमान और बोत्सवाना है। भारत जल संकट के 13 वें पायदान पर है, जिसकी आबादी 16 अन्य देशों की कुल आबादी से भी तीन गुना अधिक है। डब्ल्यूआरआई में जल संबंधी मामलों की निदेशक बेट्सी ओटो के अनुसार,"पानी सभी के लिए बहुत मायने रखता है"। वर्तमान में हम वैश्विक जल संकट का सामना कर रहे हैं। हमारी आबादी और अर्थव्यवस्था बढ़ती जा रही है और जिसकी पानी की आवश्यकता और मांग भी निरंतर बढ़ती जा रही है। लेकिन जलवायु परिवर्तन, पानी की बर्बादी और प्रदूषण ने इसकी आपूर्ति के लिए बड़ा खतरा पैदा कर दिया है।"

13
वें स्थान पर है भारत, विश्व भर जल संकट से जूझ रहे 17 देशों में

अर्थव्यवस्था

शहरों में पहुंच रहा ग्रामीण भारत का पैसा

गैर खाद्य मुद्रास्फीति बढ़ने से ग्रामीणों की आमदनी हो रही कम, खर्च का बढ़ रहा दबाव

पिछले दो साल से खाद्य मुद्रास्फीति कम हो रही है और गैर खाद्य मुद्रास्फीति बढ़ रही है, जो यह संकेत देता है कि ग्रामीण क्षेत्र की आय शहरों में पहुंच रही है। यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए शुभ संकेत नहीं हैं। खासकर ऐसे समय में, जब कमजोर मॉनसून की वजह से कृषि संकट के और गहराने के संकेत मिल रहे हैं।

हाल ही में रेटिंग एजेंसी क्रिसिल की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि खाद्य मुद्रास्फीति कम हो रही है, जबकि गैर खाद्य मुद्रास्फीति में वृद्धि हो रही है। इसका सीधा सा मतलब है कि ग्रामीणों खासकर किसानों की आमदनी तो कम होगी, लेकिन उन्हें गैर खाद्य वस्तुएं खरीदने के लिए अधिक पैसा खर्च करना पड़ेगा और ग्रामीण क्षेत्र का पैसा शहरों में जाएगा।

सांख्यिकीय मंत्रालय की ओर से पिछले माह जारी आंकड़े बताते हैं कि जून माह में उपभोक्ता खाद्य वस्तुओं के मूल्य सूचकांक में 2.17 प्रतिशत, जबकि सामान्य सूचकांक (सभी समूह) में 3.18 प्रतिशत ही वृद्धि हुई। अगर केवल ग्रामीण क्षेत्र की ही बात करें तो ग्रामीण क्षेत्र में खाद्य वस्तुओं के मूल्य सूचकांक में केवल 0.43 प्रतिशत वृद्धि हुई है, जबकि इसके मुकाबले सामान्य मूल्य सूचकांक में 2.21 प्रतिशत वृद्धि हुई। आंकड़े बताते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में फलों के मूल्य सूचकांक में 7 प्रतिशत, सब्जियों में 2 प्रतिशत, चीनी में 1.6 प्रतिशत की कमी हुई, जबकि गैर खाद्य वस्तुओं में स्वास्थ्य मूल्य सूचकांक में 9.61 फीसदी, मनोरंजन पर 6.24 प्रतिशत, शिक्षा पर 8.68 प्रतिशत, घरेलू सामान व सेवाओं पर 5.20 फीसदी वृद्धि हुई है। जो साफ संकेत देते हैं कि ग्रामीण अपनी कमाई का काफी हिस्सा शहरी वस्तुओं पर खर्च करते हैं।

ऐसे समय में, जब कमजोर मॉनसून की वजह से ग्रामीण अर्थव्यवस्था की हालत सही नहीं मानी जा रही, खाद्य वस्तुओं के मूल्य सूचकांक में वृद्धि न होना अच्छे संकेत नहीं माने जा रहे हैं। नेशनल कौंसिल ऑफ अप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च (एनसीएईआर) की रिपोर्ट में कहा गया है कि कमजोर मॉनसून ग्रामीण क्षेत्र की मांग पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है और मांग प्रभावित होते ही उद्योगों पर असर पड़ता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि इस वर्ष मॉनसून के कमजोर होने के संकेत मिलते ही ऑटो सेक्टर पहले ही अपना उत्पादन कम कर चुका है और इस वजह से इस सेक्टर में नौकरियों के जाने का सिलसिला शुरू हो चुका है।

परमाणु हादसों पर बंधे हाथ

विश्व स्वास्थ्य संगठन 1959 की संधि के कारण परमाणु हादसे रिपोर्ट नहीं करता

कुंदन पाण्डेय

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) वैश्विक स्वास्थ्य के मुद्दे पर काम करने वाला संयुक्त राष्ट्र का झंडाबरदार संगठन है। यह दुनियाभर में स्वास्थ्य से जुड़े मामलों का अध्ययन करता है। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से एक अति महत्वपूर्ण मुद्दे की उपेक्षा करता है। डब्ल्यूएचओ एटोमिक रेडिएशन अथवा परमाणु हादसों को संज्ञान में नहीं लेता। यही वजह है कि डब्ल्यूएचओ ने दुनियाभर में हुईं परमाणु दुर्घटनाओं की रिपोर्ट नहीं की, चाहे वह 1986 की युक्रेन की चेर्नोबिल परमाणु दुर्घटना हो या 2011 में जापान के फुकुशिमा में हुआ हादसा।

परमाणु दुर्घटनाओं की उपेक्षा की मूल वजह 28 मई 1959 को अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (आईएईए) से की गई संधि है जिसे "डब्ल्यूएचए12-40" नाम से जाना जाता है। यह समझौता डब्ल्यूएचओ क परमाणु रेडिएशन से होने वाली बीमारियों को रिपोर्ट करने से रोकता है। संधि के मुताबिक, डब्ल्यूएचओ और आईएईए सामान्य हित से जुड़े मामलों पर एक-दूसरे का सहयोग करेंगे और नियमित परामर्श लेंगे। डब्ल्यूएचओ के इस दोहरे रवैया के खिलाफ "इंडिपेंडेंट डब्ल्यूएचओ" संगठन ने 2007 से 2017 तक डब्ल्यूएचओ के मुख्यालय के बाहर धरना भी दिया। संगठन की वेबसाइट के अनुसार, डब्ल्यूएचओ स्वास्थ्य क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए नियम बनाता है। लेकिन जब परमाणु उद्योग के दुष्परिणामों से पीड़ितों की बात आती है तो वह नियमों को अनदेखा कर देता है।

सौजन्यः इंडिपेंडेंट डब्ल्यूएचओ

इंडिपेंडेंट डब्ल्यूएचओ संगठन के अनुसार, "डब्ल्यूएचओ ने चेर्नोबिल हादसे के 5 साल बाद गंभीर रूप से प्रदूषित इस क्षेत्र का दौरा किया और उसने इस त्रासदी के स्वास्थ्य पर पड़े दुष्परिणामों को छुपा लिया।" आरोप है कि डब्ल्यूएचओ ने 1995 और 2001 में चेर्नोबिल हादसे पर हुए सम्मेलन की कार्रवाई को भी प्रकाशित नहीं किया। उसने हादसे में 50 से कम लोगों के मरने की पुष्टि की जबकि 2009 में न्यूयॉर्क एकेडमी ऑफ साइंसेस ने करीब 10 लाख लोगों के मरने का अनुमान लगाया था। डब्ल्यूएचओ ने इसे मान्यता ही नहीं दी। जापानी मीडिया का कहना है कि डब्ल्यूएचओ और आईएईए की संधि के कारण ही फुकुशिमा में हुए परमाणु हादसे को नजरअंदाज किया गया।

ऐसा नहीं है कि डब्ल्यूएचओ हमेशा से आईएईए से हुए समझौते से बंधा रहा है। माना जाता है कि यह समझौता दो घटनाक्रमों के बाद लागू किया। पहला, घटनाक्रम था अमेरिका का "एटम फॉर पीस" कार्यक्रम और दूसरा था डब्ल्यूएचओ की वे बैठकें जिसमें न्यूक्लियर रेडिएशन फैलने की आशंका जाहिर की गई थी। 1956 में डब्ल्यूएचओ ने मनोचिकित्सकों का एक सम्मेलन बुलाया था जिसका मकसद था शांतिपूर्ण परमाणु गतिविधियों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का पता लगाना। सम्मेलन में हिस्सा लेने वाले मनोचिकित्सक इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि शांतिपूर्ण परमाणु गतिविधियों में भी आम लोगों को प्रभावित करने की क्षमता है। दरअसल, डब्ल्यूएचओ और आईएईए दोनों संयुक्त राष्ट्र के संगठन हैं। आईएईए का जन्म 1957 में हुआ था। इसी साल डब्ल्यूएचओ ने परमाणु ऊर्जा के दुष्परिणामों को जानने के लिए मनोचिकित्सकों से बैठक की थी। अमेरिका के परमाणु विरोधी एक्टिविस्ट हेलेन काल्डीकोट के अनुसार, यह आखिरी मौका था जब डब्ल्यूएचओ ने परमाणु ऊर्जा के खिलाफ स्टैंड लिया था। संयुक्त राष्ट्र की दो एजेंसियां परस्पर विरोधी कार्य नहीं कर सकतीं। 1959 के समझौते ने इस पर मुहर लगा दी और इसी समझौते ने अब भी डब्ल्यूएचओ के हाथ बांध रखे हैं।

बांध सुरक्षा

देशभर में बांध सुरक्षा पर छिड़ी बहस पर दस सवाल

1 इन दिनों बांध सुरक्षा की बात क्यों हो रही है?

महाराष्ट्र के रत्नागिरी में इसी साल 2 जुलाई की रात तिवरे बांध टूट गया। हादसे में कम से कम 18 लोगों की मौत हो गई और आसपास के कई गांव डूब गए। इससे पहले 2018 में राजस्थान के झुंझनूं जिले के मलसीसर गांव में भी बांध टूटने की घटना हुई थी। बिहार के भागलपुर में भी 2017 एक नया नवेला बांध टूटा था। इन घटनाओं ने बांध सुरक्षा पर एक बार फिर बहस छेड़ दी है।

2 देश में बांधों को सुरक्षित बनाने की दिशा में सरकार ने क्या प्रयास किए हैं?

देश में बांधों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए अगस्त 2019 में लोकसभा में बांध सुरक्षा विधेयक पास किया गया है। 16वीं लोकसभा में केंद्र सरकार इस विधेयक को पास नहीं करा पाई थी। सरकार का दावा है कि मौजूदा विधेयक देश में मौजूद 5,264 बड़े और अन्य छोटे और मझौले बांधों की सुरक्षित करेगा।

3 बांध सुरक्षा विधेयक पर कब-कब बात हुई?

1980 के दशक में पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर बांध सुरक्षा पर बहस छिड़ी। 1982 में केंद्रीय जल आयोग की अध्यक्षता में गठित समिति ने 1986 में अपनी रिपोर्ट दी और बांध सुरक्षा पर जोर दिया। 2002 में राज्यों को बांध सुरक्षा विधेयक का मसौदा भेजा गया। 2010 में संसद में यह विधेयक रखा गया। 15वीं लोकसभा में भी संसद भंग होने के कारण यह विधेयक पास नहीं हो पाया।

4 यह विधेयक इतने लंबे समय से क्यों लटका रहा?

इसके पीछे सबसे बड़ी वजह है राज्यों का विरोध। राज्यों को लगता है कि पानी राज्यों की विषय सूची में है और कानून बनने के बाद पानी व बाढ़ नियंत्रण पर केंद्र का दखल बढ़ जाएगा। उदाहरण के लिए तमिलनाडु को डर है कि केंद्रीय कानून के बाद वह केरल में स्थित बांधों पर अपना नियंत्रण खो देगा। हालांकि केंद्रीय जल संसाधन मंत्री गजेंद्र सिंह शेखावत ने स्पष्ट किया है कि केंद्र की मंशा जल, बांधों और उससे उत्पन्न बिजली पर नियंत्रण की नहीं है।

5 बांधों के साथ क्या समस्या है?

भारत के 293 बांध 100 साल से अधिक पुराने हो चुके हैं। 25 प्रतिशत बांध 50 से 100 साल पुराने हैं और 80 प्रतिशत बांध 25 साल से ज्यादा पुराने हैं। इन्हें सुरक्षित बनाने के लिए तत्काल मरम्मत या नए सिरे से बनाने की जरूरत है ताकि उन्हें विफल होने से बचाया जा सके। भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (सीएजी) ने 2017 में जारी अपनी ऑडिट रिपोर्ट में पाया था कि बड़े बांधों में केवल 349 यानी सात प्रतिशत में ही आपातकालीन कार्ययोजना मौजूद थी। वहीं 231 बांधों यानी पांच प्रतिशत में ही ऑपरेटिंग मैन्युअल थे। सीएजी ने पाया था कि 17 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में केवल दो राज्यों ने ही मॉनसून से पहले बांधों की पूरी जांच कराई। केवल तीन राज्यों ने आंशिक जांच की और 12 राज्यों ने इस मामले में कुछ नहीं किया।

6 क्या बांध बाढ़ की विभीषिका बढ़ाने में योगदान देते हैं?

हां। भारी बारिश के बीच कई बार बांध का पानी अचानक छोड़ने से बाढ़ आ जाती है। उदाहरण के लिए हाल ही में महाराष्ट्र और कर्नाटक में जब बांध का पानी छोड़ा गया था, बाढ़ की स्थिति और खराब हो गई। महाराष्ट्र के कोल्हापुर, सांगली और सतारा में आई बाढ़ की विभीषिका उस समय बढ़ गई जब 5 अगस्त को कोयना, राधानगरी और वार्ना के बांध से पानी छोड़ा गया। करीब 100 प्रतिशत पानी भरने के बाद बांध से पानी छोड़ा गया। पिछले साल केरल में आई बाढ़ को भी बांधों से अचानक छोड़े गए पानी ने बढ़ाया। अचानक और लोगों को बिना सूचना दिए पानी छोड़ने पर उन्हें संभलने का मौका नहीं मिल पाता। इससे जानमाल का नुकसान काफी बढ़ जाता है।

7 किन कारणों से बांध विफल होते हैं?

बांध विफलता का सबसे बड़ा कारण है बाढ़। 44 प्रतिशत बांध तब विफल होते हैं जब बाढ़ का पानी का अचानक भर जाता है। दूसरा बड़ा कारण पानी की निकासी की अपर्याप्त व्यवस्था (25 प्रतिशत) है। इसके अलावा त्रुटिपूर्ण पाइपिंग अथवा निर्माण कार्य के कारण भी बांध विफल होते हैं।

8 भारत में कुल कितने बांध विफल हुए हैं?

1950 से 2010 के बीच 36 बांध विफल हुए हैं। राजस्थान में सर्वाधिक 11 बांध विफल हुए हैं जबकि मध्य प्रदेश में 10, गुजरात में 5 और महाराष्ट्र में 4 बांध विफल हुए हैं। आंध्र प्रदेश में 2 जबकि तमिलनाडु, उत्तराखंड, ओडिशा और उत्तर प्रदेश में बांध विफलता की एक-एक घटना हुई है। केंद्रीय जल संसाधन मंत्री ने हाल ही में संसद में बताया कि देश में अब तक 40 बांध विफल हुए हैं।

9 बांध विफलता की पहली घटना कब हुई?

बांध विफलता की पहली घटना 1917 में मध्य प्रदेश में तब हुई, जब ज्यादा पानी भरने के कारण तिगरा बांध टूट गया। जानमाल को सबसे अधिक नुकसान 1979 में गुजरात का मच्छू बांध टूटने पर हुआ। इस हादसे में करीब 2,000 लोग मारे गए।

10 बांध सुरक्षा कानून बनने के बाद क्या बदलाव आएगा?

कानून बनने के बाद केंद्रीय स्तर पर बांधों की निगरानी, मरम्मत और निरीक्षण संभव हो सकेगा। बांध सुरक्षा के लिए एक राष्ट्रीय समिति और प्राधिकरण का गठन होगा जो नीतियां बनाएंगे। देश में मौजूद 10 मीटर से ऊंचे सभी बांधों पर यह कानून लागू होगा।

प्रस्तुति: भागीरथ

WeForest
Making Earth Cooler

Society for Environment & Bio-diversity Conservation
SEBC

Himalaya®
SINCE 1930

TREE PLANTATION DRIVE

Himalaya organizes tree plantation drives to increase green cover, restore the quality of the Earth, and enrich the lives of local communities.

We have planted approximately 750,000 trees through 2018. Every year, around 400 students and 80 farmers from various colleges and villages actively volunteer in our drives and help improve the survival rate of the trees planted.

We have planted indigenous species such as Artocarpus heterophyllus (jackfruit), Syzygium cumini (jamun), Azadirachta indica (neem), Aegle marmelos (bilva patra), Magnifera indica (mango), Garcinia indica (kokum), Murraya koenigii (kadi patta), and Tectona grandis (teak) that are native to the specific region.

Our partnership with the Society for Environment and Biodiversity Conservation (SEBC) and WeForest helps us understand the terrain, build a stronger bond with the local communities, and plant climate-specific species to ensure and maintain a higher survival rate.

The trees planted by us have a 75% survival rate. This year, we aim to plant 60,000 saplings across the Western Ghats (Dajipur, Radhanagri, Amba, Dive Ghat), the Eastern Ghats (Parlakhemundi), and Khasi Hills in Meghalaya.

श्रीकांत चौधरी / सीएसई

मनरेगा के तहत कार्यों की जियो-टैगिंग और श्रमिकों की ऑनलाइन निगरानी संकटग्रस्त क्षेत्रों के लिए रीयल टाइम में चेतावनी देने का एक मंच प्रदान करती है

संकट से परिचित कराता उपकरण

क्या मनरेगा के तहत उत्पन्न विशाल ऑनलाइन डेटा ग्रामीण संकट पहचाने में मददगार हो सकता है?

शगुन कपिल, नई दिल्ली

यह एक अद्वितीय उपकरण है। यह महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) को ट्रैक करने वाले विशाल आंकड़ों पर आधारित है, जो वास्तविक समय (रीयल टाइम) में इसे ग्रामीण संकट से जोड़ता है और त्वरित राहत उपाय पहुंचाने में सक्षम बनाता है।

मनरेगा देश भर में 10 करोड़ से अधिक लोगों को रोजगार देता है। यह उत्तर प्रदेश की आधी आबादी के बराबर है। यह 5 लाख गांवों में लागू एक ऐसी योजना है, जो ग्रामीण संकट कम करने में मदद करती है और गांव व जिला स्तरों पर संकट की स्थिति को दर्शाती है। लेकिन कृषि संकट का पता लगाने के लिए रीयल टाइम सूचकांक के रूप में इसे हाल ही में मान्यता मिली है और राष्ट्रीय स्तर पर बहस छिड़ी है।

2018 में चार प्रबंधन शोधकर्ताओं ने इस उपकरण का पता लगाया। इंडियन स्कूल ऑफ बिजनेस, हैदराबाद के प्रसन्ना तांत्री, श्रद्धा पारिजात प्रसाद और निश्का शर्मा और नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुर के सुमित अग्रवाल मनरेगा पर शोध कर रहे थे। उन्होंने भारत के मौसम विभाग के सूखे के आंकड़ों को ब्लॉक स्तर पर मनरेगा के तहत काम की मांग और आपूर्ति के बीच संबंध को तलाशा और महसूस किया कि जब भी किसी जिले में सूखा पड़ता है, तो वहां मनरेगा के तहत कार्यरत लोगों की संख्या

में बढ़ोतरी होती है। उन्होंने 2012 से 2017 तक के आंकड़ों का विश्लेषण किया। इन लोगों ने देश के 600 जिलों का अध्ययन किया और पाया कि यह प्रवृत्ति लगभग हर जगह दिखती है। चूंकि मनरेगा डेटा प्रतिदिन अपडेट किया जाता है, इसलिए इसका उपयोग रीयल टाइम में किसी स्थानीय समस्या को उजागर करने के लिए किया जा सकता है। उन्होंने नौकरी की मांग जैसे मापदंडों का इस्तेमाल किया और 2016 से 2018 तक सामान्य, मध्यम और बड़े संकट का सामना करने वाले क्षेत्रों को दिखाने के लिए स्थानीयकृत संकट सूचकांक (आईएलडी) और एक मानचित्र विकसित किया।

यह मानचित्र एक ऐसे देश में उपयोगी उपकरण हो सकता है, जहां ग्रामीण संकट मापने का कोई पैमाना नहीं है। केंद्रीय सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय ग्रामीण घरेलू स्तर पर मासिक खपत व्यय की गणना करता है, जो स्थानीय संकट को दिखा सकता है। लेकिन यह डेटा दो साल के अंतराल पर जारी किया जाता है। यहां तक कि मंत्रालय जो जिला-स्तरीय जीडीपी जारी करता है, वह भी अनियमित है। तांत्री कहते हैं, "तनावग्रस्त क्षेत्रों के लिए कुछ करने का समय पहले ही बीत चुका है। हमें कार्रवाई करने के लिए तीन या चार साल तक डेटा का इंतजार नहीं करना चाहिए।"

पिछले साल शोधकर्ताओं ने अपने उपकरण के साथ कैबिनेट सचिवालय का दरवाजा खटखटाया, जिसके बाद 4 जुलाई को जारी आर्थिक सर्वेक्षण 2018-19 में आईएलडी का उल्लेख किया गया। आर्थिक सर्वे कहता है, "एक आर्थिक झटका घर के उपभोग व्यय को काफी कम करता है, ऐसे में सही समय पर सहायता प्रदान करना महत्वपूर्ण है।" यह सर्वे कहता है कि तकनीक का कुशल उपयोग जमीन पर अंतर ला सकता है।

मनरेगा के तहत कार्यों की जियो-टैगिंग और श्रमिकों की ऑनलाइन निगरानी पहले से ही संकटग्रस्त क्षेत्रों के लिए रीयल टाइम में चेतावनी देने का एक मंच प्रदान करती है। उदाहरण के लिए, *डाउन टू अर्थ* ने जुलाई 2019 में संकट के स्तर को देखने के लिए रीयल टाइम आंकड़ों पर नजर रखी। केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय के अनुसार, महाराष्ट्र के सूखाग्रस्त अमरावती और नागपुर में 1.8 लाख लोगों ने मनरेगा के तहत काम की मांग की थी, जबकि बेहतर स्थिति वाले जिलों कोल्हापुर और रायगढ़ में काम मांगने वालों की संख्या सिर्फ 18,798 है। आंध्र प्रदेश का भी यही हाल है, जहां सूखाग्रस्त कुरनूल और प्रकाशम जिलों में 16 लाख लोगों ने काम की मांग की, जबकि कडप्पा और विशाखापत्तनम में यह आंकड़ा 8 लाख से कम है।

शोधकर्ताओं ने ग्रामीण संकट का पता लगाने के लिए प्राथमिक स्रोत के रूप में सूखे का उपयोग किया है, क्योंकि ग्रामीण गरीब, जो मनरेगा के लक्षित लाभार्थी हैं, ज्यादातर कृषि पर निर्भर रहते हैं और प्रतिकूल मौसम आर्थिक संकट का संकेतक बन जाता है। हालांकि, इसका मतलब यह नहीं है कि सूखा एकमात्र घटना है जिसके साथ इसे जोड़ा जा सकता है।

मनरेगा के तहत काम की मांग को मौसम से जुड़ी अन्य घटनाओं के साथ भी जोड़ा जा सकता है, जैसे बेमौसम बारिश, ओले या बर्फबारी जो फसलों को नष्ट कर देते हैं और ग्रामीण संकट पैदा करते हैं। इसके अलावा, मनरेगा के तहत काम की मांग में वृद्धि के लिए सूखा एकमात्र कारण नहीं है। फसल नष्ट करने वाले कीटों के हमले भी लोगों को मनरेगा के तहत काम का विकल्प चुनने के लिए मजबूर कर सकते हैं। इसी तरह किसी बड़े बुनियादी ढांचा परियोजना के लिए भूमि अधिग्रहण की वजह से भी ऐसा हो सकता है। इन सभी को पोर्टल के माध्यम से देखा जा सकता है। एक बार जब सरकार मनरेगा की संख्या में वृद्धि पर गौर करती है, तो वह कारण खोजने और राहत प्रदान करने के लिए जांच शुरू कर सकती है (देखें *'समय पर हस्तक्षेप'*)।

हालांकि सरकार ने अभी तक यह तय नहीं किया है कि इस उपकरण का उपयोग कैसे किया जाए, लेकिन सरकार ने इसकी उपयोगिता को स्वीकार किया है। ग्रामीण विकास विभाग के तहत मनरेगा के निदेशक, राघवेन्द्र प्रताप सिंह का कहना है कि चूंकि योजना के तहत सभी डेटा को ऑनलाइन किया जा रहा है, इसलिए ग्रामीण संकट के बारे में एक आकलन किया जा सकता है।

हालांकि, यह अवधारणा भी त्रुटीहीन नहीं है। पूर्ववर्ती योजना आयोग के सदस्य मिहिर शाह बताते हैं, "मनरेगा के तहत काम की मांग के रिकॉर्ड को कम करके आंका गया है। कानून कहता है कि यदि सरकार 15 दिनों के भीतर आवेदक को काम नहीं देती है, तो उसे भत्ता देना होगा। चूंकि सरकारें ऐसा नहीं चाहतीं, इसलिए वे मांगों को दर्ज नहीं करतीं। जब भी वे काम देने में सक्षम होती हैं, तारीखों में हेरफेर कर देती हैं और कहती हैं कि आवेदन 15 दिन पहले आया था। इसलिए, हम इस धारणा पर काम कर रहे हैं कि प्रदान किया गया कार्य मांग के अनुसार है।" केंद्रीय रोजगार गारंटी परिषद मनरेगा के तहत प्रगति की देखरेख करने वाला एक केंद्रीय निकाय है। इसके पूर्व सदस्य के एस गोपाल भी कहते हैं कि काम की मांग की संख्या संकट को मापने के लिए एक कुशल संकेतक नहीं होगा। तांत्री का मानना है कि उपकरण के साथ समस्याएं हो सकती हैं, लेकिन इसका इस्तेमाल अभी भी वर्षों तक डेटा की प्रतीक्षा करने से बेहतर है।

समय पर हस्तक्षेप

रीयल टाइम में स्थानीयकृत संकट के लिए सूचकांक कैसे काम करता है?

मनरेगा की ऑनलाइन निगरानी के तहत सालाना 30 लाख कार्यों की जियो-टैगिंग और 10 करोड़ से अधिक श्रमिकों का डेटा लिया जाता है। पंचायतों से लेकर केंद्र सरकार तक, सभी के पास इस डेटा की रीयल टाइम में पहुंच है।

काम की मांग में कोई भी वृद्धि स्थानीय स्थिति के बारे में चेतावनी देती है। असामयिक मौसमी घटना की स्थिति में, राहत उपायों का पता लगाने और घोषित करने में महीनों लगते हैं। ये रीयल टाइम डेटा तुरंत काम करेगा।

जिला के अधिकारियों से लेकर राज्य स्तर के अधिकारियों तक, सभी काम की मांग में आई अचानक वृद्धि की जांच कर सकते हैं और कारणों का पता लगा सकते हैं। चूंकि, मॉनिटरिंग डेटा सभी के द्वारा हासिल किया जा सकता है, इसलिए राहत प्रयासों को लागू करने में आसानी हो सकती है।

स्वतंत्रता पर हमला

सूचना के अधिकार में संशोधन पहले से कमजोर सूचना आयोगों को और निशक्त बना देंगे

एम श्रीधर आचार्युलु

मैंने सोचा था कि प्रचंड बहुमत से दुबारा चुनकर आने के बाद नरेंद्र मोदी सरकार काफी मजबूत हुई है। लेकिन अफसोस की बात है कि सरकार सूचना के अधिकार (आरटीआई) और केंद्रीय सूचना आयोग (सीआईसी) से डर रही है। मानो ये ऐसे राक्षस हैं, जो शक्तिशाली शासकों को नुकसान पहुंचा सकते हैं। आरटीआई अधिनियम के तहत, भारत में सूचना आयुक्त का पद एक दंतहीन संस्था से थोड़ा ही अधिक ताकतवर है। हालांकि यह केंद्रीय चुनाव आयुक्त और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान पद है, लेकिन यह इतना कमजोर है कि यह अपने स्वयं के आदेश को लागू नहीं करवा सकता। हालांकि इसके पास स्वतंत्रता है, लेकिन अधिकांश सूचना आयुक्त गोपनीयता की अपनी पोषित संस्कृति से बाहर नहीं आ सके हैं। वजह, एक जनसेवक के तौर पर वे दशकों तक अपनी पुरानी कार्य संस्कृति में ही डूबे रहे और सरकारी कृपा की वजह से पारदर्शिता लाने जैसे काम को लागू करवाने के लिए चुने गए।

मुझे वास्तव में यह समझ में नहीं आता कि सरकार डरी हुई है या नौकरशाही आरटीआई से खफा है, क्योंकि हर साल 60 से 70 लाख लोग सरकार से जानकारी मांगते हैं। क्या सरकार ने आरटीआई कानून को खत्म करने के लिए भ्रष्ट बाबुओं के दबाव में घुटने टेक दिए हैं?

आरटीआई सरकारी कार्यालयों की फाइलों में पड़े कागज की एक प्रति पाने तक ही सीमित है और सीआईसी ज्यादा से ज्यादा किसी लोक सूचना अधिकारी को कारण बताओ नोटिस जारी कर सकता है या अधिकतम 25,000 रुपए का जुर्माना लगा सकता है। सूचना आयोग के पास केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण जैसी शक्ति भी नहीं है। सरकार ने इस कानून को कमजोर करने के लिए अपने थिंक टैंक का इस्तेमाल किया, अपनी लॉबिंग पावर को आगे किया, क्षेत्रीय दलों से मदद मांगी और रणनीतिक रूप से सांसदों को विधेयक पढ़ने तक का समय नहीं दिया, जिससे वे अपना विरोध सही तरीके से दर्ज करा सकें। सरकार ने बिना समय गंवाए पर इस बड़ी तेजी से अमल किया किया। तब तक किसी को इस संशोधन के बारे में पता तक नहीं चला जब तक यह संसद में निर्धारित बिजनेस में नहीं दिखा। हाल के चुनाव में बीजेपी को पराजित करने वाले तीन शक्तिशाली

तारिक अजीज/ सीएसई

क्षेत्रीय दल, टीआरएस (तेलंगाना), वाईएसआर कांग्रेस पार्टी (आंध्र प्रदेश) और बीजू जनता दल (ओडिशा) ने पहले विधेयक का विरोध किया, लोकसभा में समर्थन नहीं दिया लेकिन राज्यसभा में एनडीए की ताकत को बढ़ा दिया, जिससे यह विधेयक आसानी से पारित हो गया। यह आश्चर्य की बात है कि तेलंगाना के मुख्यमंत्री के चंद्रशेखर राव और आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री जगन मोहन रेड्डी जहां पहले शक्तियों के केंद्रीकरण के खिलाफ फेडरल फ्रंट बनाने की बात कर रहे थे, राज्य की स्वायत्तता की बात कर रहे थे, अचानक उन्होंने पलटी मारी और सूचना आयुक्त पर केंद्रीय नियंत्रण के पक्ष में खड़े हो गए।

राज्यों की स्वायत्तता छीनी

राजस्थान एक ऐसा राज्य है, जहां सूचना का अधिकार आंदोलन का जन्म हुआ और फिर इसने पूरे देश के शासन में क्रांति लाने का काम किया। 2019 में आरटीआई संशोधन के साथ ही राज्य सरकार को, अधिसूचना जारी करने के बावजूद, राज्य सूचना आयुक्तों के चयन प्रक्रिया को रोकना होगा, क्योंकि राज्यों को सूचना आयुक्तों का दर्जा, कार्यकाल, वेतन और सेवा शर्तों के लिए केंद्र के निर्णय की प्रतीक्षा करनी होगी। आरटीआई अधिनियम 2005 और भारतीय संविधान के मानदंडों के तहत राज्य सूचना आयोग का मौजूदा स्टेटस (दर्जा) पूरी तरह खारिज कर दिया जाएगा। यह संशोधन किसी भी राज्य में संवैधानिक अधिकार के तौर पर सूचना का अधिकार कानून लागू करने की राज्यों की संप्रभु शक्तियों का अतिक्रमण करने के लिए बनाया गया है। यह सूचना पाने और सार्वजनिक रिकॉर्ड तक पहुंच के अधिकार को लागू करने वाले आरटीआई कानून व संविधान के अनुरूप नहीं है। लोगों ने राष्ट्रपति से पोस्ट कार्ड, ईमेल, ऑनलाइन याचिकाओं और ट्विटर के माध्यम से सूचना का अधिकार (संशोधन) विधेयक, 2019 को वापस करने और अस्वीकार करने का अनुरोध किया लेकिन उनके अनुरोध को नजरअंदाज कर दिया गया। लोगों का कहना है कि ये विधेयक दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा विस्तृत विचार-विमर्श किए बिना, जल्दबाजी में पास कर के राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेजा गया है।

यह संशोधन संविधान की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता, क्योंकि यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ए) का उल्लंघन करता है, जिसके तहत सूचना का अधिकार लोगों के मूल अधिकार का एक अभिन्न अंग है। इस संशोधन का उद्देश्य सूचना आयोग जैसी संस्था को नीचा दिखाना और उसके कार्य-प्रक्रिया की स्वतंत्रता या स्वायत्तता को नुकसान पहुंचाना है।

केंद्र के पास राज्यों के लिए कानून बनाने का अधिकार नहीं

2005 से पहले आरटीआई को लेकर आठ राज्य सरकारों ने कानून बनाए थे, जिन्हें आरटीआई अधिनियम 2005 के बावजूद लागू किया जा रहा है। ये राज्य अधिनियम समवर्ती सूची की प्रविष्टि 12 के कारण मान्य हैं जो कहता है, "साक्ष्य और शपथ; कानून, सार्वजनिक कानून और रिकॉर्ड और न्यायिक कार्यवाही की मान्यता।"

आरटीआई नागरिकों को सार्वजनिक रिकॉर्ड तक पहुंचने में सक्षम बनाता है, जो सार्वजनिक प्राधिकरण के पास होता है। आठ राज्यों का कानून इसी खंड या सूची III के एंट्री के तहत बचा हुआ है। आरटीआई विधेयक 2004 का उद्देश्य है, "प्रस्तावित कानून भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 के तहत मान्य सूचना के अधिकार को प्रभावी बनाने के लिए एक प्रभावी ढांचा प्रदान करेगा।" ऐसे में यह आरटीआई संशोधन इस कानून को कमजोर करेगा और सूचना आयुक्तों के कद, शक्तियों और स्वायत्तता पर प्रतिबंध लगाएगा।

अन्य ट्रिब्यूनल के साथ समानता

दिलचस्प रूप से वैधानिक ट्रिब्यूनल के अध्यक्षों और सदस्यों के वेतन को राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन को अपग्रेड करने वाले कानून पर अपनी सहमति देने से पहले ही अपग्रेड कर दिया गया था। यह कानून जनवरी 2018 में वैधानिक ट्रिब्यूनल के वेतन में वृद्धि के छह महीने बाद राजपत्रित किया गया था। ऐसा लगता है कि केंद्र सरकार को उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन को अपग्रेड करने से पहले उपर्युक्त वैधानिक ट्रिब्यूनल का वेतन बढ़ाने से कोई समस्या नहीं थी, जबकि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय संवैधानिक संस्थाएं है। इसलिए केंद्र सरकार आरटीआई कानून में संशोधन के लिए जो तर्क दे रही है, वह गलत हैं। सरकार का तर्क है कि सूचना आयुक्त वैधानिक प्राधिकरण है और इसे चुनाव आयोग जैसी संवैधानिक संस्था की तरह नहीं माना जा सकता।

इससे पहले, केंद्र सरकार ने विभिन्न ट्रिब्यूनल के सदस्यों का दर्जा, वेतन और भत्तों को सुसंगत बनाने की मांग की थी, जिसके तहत उनके अध्यक्षों का वेतन चुनाव/ सूचना आयुक्तों और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समतुल्य सदस्यों के बराबर किया गया था।

भारत के विधि आयोग ने 2017 में ट्रिब्यूनल के वैधानिक ढांचों के आकलन पर अपनी 272वीं रिपोर्ट में कई वैधानिक ट्रिब्यूनल के वेतन और भत्ते को सुसंगत बनाने के लिए कहा था। विधि आयोग की

सिफारिशों की भावना सूचना आयोगों पर भी समान रूप से लागू होती है और उनके साथ अलग तरीके से व्यवहार करने का कोई कारण नहीं है। यहां यह नोट करना प्रासंगिक है कि चुनाव/सूचना आयुक्तों का वेतन सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समान है। आरटीआई अधिनियम 2005 की धारा 13 (5) में स्पष्ट रूप से वेतन संरचना और सीआईसी की शर्तों को निर्धारित किया गया है। आरटीआई अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (5) में प्रावधान है कि मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्तों के वेतन, भत्ते और अन्य नियम और शर्तें मुख्य चुनाव आयुक्त और चुनाव आयुक्तों के समान ही होंगी।

चूंकि मुख्य चुनाव आयुक्त और चुनाव आयुक्तों के वेतन, भत्ते, अन्य नियम और शर्तें सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के बराबर हैं, इसलिए मुख्य सूचना आयुक्त, सूचना आयुक्त और राज्य के मुख्य सूचना आयुक्त सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समकक्ष हो जाते हैं। उनके वेतन, भत्ते, सेवा के अन्य नियमों और शर्तों के संदर्भ में भी यह लागू होता है। सूचना आयुक्तों की वास्तविक ताकत और स्वतंत्रता इन प्रावधानों से ही मिलती है। इस ताकत को हटाने से सूचना आयुक्त कमजोर हो जाएंगे और वरिष्ठ नौकरशाहों के अधीन हो जाएंगे।

संशोधन के बाद राज्य सूचना आयुक्तों के नियम और दर्जा केंद्र द्वारा निर्धारित होंगे। यह संघीय ढांचे के सिद्धांत के खिलाफ है, जो संविधान की मूल संरचना है और जिसे संशोधित नहीं किया जा सकता

संशोधन असंवैधानिक

संशोधन इसलिए असंवैधानिक है क्योंकि यह राज्यों के संप्रभु प्राधिकरण का अतिक्रमण करता है। सूचना आयुक्तों का दर्जा तय करने के संदर्भ में केंद्र न केवल विधायिका से बल्कि राज्यों से भी अधिकार छीन रहा है। संशोधन के बाद राज्य सूचना आयुक्तों के नियम और दर्जा केंद्र द्वारा निर्धारित होंगे। यह संघीय ढांचे के सिद्धांत के खिलाफ है, जो संविधान की मूल संरचना है और जिसे संसद द्वारा संशोधित नहीं किया जा सकता। अभी तक, सीआईसी के पास कैबिनेट सचिव या रक्षा सचिव या गृह सचिव या किसी अन्य प्रमुख सचिव को सूचना देने का आदेश देने का अधिकार था। सूचना आयुक्तों की नियुक्ति शर्तों को तय करने के लिए विधायिका से शक्ति प्राप्त करने के बाद, केंद्रीय कार्यपालिका सूचना आयुक्तों को इस तरह का दर्जा दे सकती है, जिससे कोई सूचना आयुक्त केंद्र और राज्यों के बाबुओं को निर्देशित नहीं कर पाएं।

इसी तरह, अधिनियम की धारा 16 की उप-धारा (5) में यह प्रावधान है कि राज्य के मुख्य सूचना आयुक्त और राज्य सूचना आयुक्तों के वेतन, भत्ते और अन्य नियम व सेवा शर्तें चुनाव आयुक्त और राज्य के प्रमुख सचिव की तरह ही होंगे। अब यह भी बदल जाएगा और केंद्र द्वारा थोपी गई शर्तों के अनुसार, ये सब निर्धारित किया जाएगा। इसमें राज्य की कोई भूमिका नहीं होगी। सवाल यह है कि जब विभिन्न ट्रिब्यूनल के सदस्यों के वेतन ढांचे का सामंजस्य हो गया है, तो सरकार सूचना आयोग और चुनाव आयोग के बीच के सामंजस्य को क्यों तोड़ना चाहती है। सूचना आयुक्तों का दर्जा कम करने के कारण क्या है? सरकार सूचना आयोग को आखिर क्या दर्जा देना चाहती है?

आरटीआई अधिनियम की धारा 27 राज्य सरकार को सूचना आयोग के कर्मचारियों और कर्मचारियों के वेतन, भत्ते और सेवा शर्तों से संबंधित नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है। इसके अनुसार, सरकार, सरकारी राजपत्र में अधिसूचना जारी करके, इस अधिनियम के प्रावधानों को पूरा करने के लिए नियम बना सकती है। राज्यों के पास नियम बनाने का अधिकार है। कार्मिक मंत्री का यह कहना कि राज्य के पास नियम बनाने की कोई शक्ति नहीं है, तथ्यात्मक रूप से गलत है।

आरटीआई संशोधन विधेयक के माध्यम से, केंद्र सरकार राज्य सूचना आयुक्तों के वेतन, भत्ते और कार्यकाल को निर्धारित करने वाले नियम बनाने की शक्ति पर नियंत्रण चाहती है। यह संशोधन सार्वजनिक रिकॉर्ड तक पहुंच प्रदान करने वाले मौजूदा तंत्र को नुकसान पहुंचाता है। राज्य सूचना आयोग आरटीआई अधिनियम के तहत सार्वजनिक प्राधिकरण भी हैं और ये वर्तमान में संबंधित राज्य सरकारों द्वारा धारा 2 (1) (ए) के आधार पर आरटीआई नियमों को लागू कर रहे हैं। धारा 27 के तहत राज्य सरकारों को नियम बनाने की शक्ति है। चूंकि राज्य सूचना आयोग आरटीआई की धारा 15 के तहत उपयुक्त राज्य सरकारों द्वारा गठित की जाती है, इसलिए सरकारें धारा 27 में सूचीबद्ध फीस और अन्य मामलों से संबंधित आरटीआई नियम बनाती हैं।

आरटीआई कानून 2005 की धारा 15-18 राज्य सूचना आयोगों की स्थापना और सूचना आयुक्तों को हटाने का प्रावधान देती है, जो अधिनियम के संघीय ढांचे का मुख्य स्रोत है। ये धाराएं केंद्र और राज्य के बीच शक्तियों का वितरण करती हैं। इस कानूनी स्थिति को मान्यता देते हुए, आरटीआई अधिनियम राज्य के सभी तीन अंगों के प्रमुखों को सक्षम प्राधिकार के रूप में नियम बनाने की शक्ति देता है। यानी, केंद्र सरकार जो नियम बनाती है वह केवल सरकार की कार्यकारी शाखा, केंद्र शासित प्रदेशों और ऐसे अन्य निकायों पर लागू होते हैं। लोकसभा और विधानसभा के स्पीकर, राज्यसभा और विधान परिषद के सभापति, भारत के मुख्य न्यायाधीश और संबंधित उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों को अपने अधिकार क्षेत्र में आरटीआई अधिनियम को लागू करने के लिए नियम बनाने की शक्ति मिली हुई है। केंद्र सरकार के आरटीआई नियमों को सब जगह लागू नहीं किया जा सकता। "उपयुक्त सरकार" और "सक्षम प्राधिकारी" को आरटीआई अधिनियम की धारा 27 और 28 के तहत पारिभाषित किया गया है, जिन्हें नियम बनाने की शक्ति है। यह न केवल राज्य के तीन अंगों के बीच शक्तियों के विभाजन का सम्मान करती है, बल्कि केंद्र और राज्य सरकारों के बीच शक्ति का अर्ध-संघीय वितरण भी करती है। संशोधन इस सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था को भंग करते हैं।

कानून में संशोधन आरटीआई अधिनियम और भारत के संघीय ढांचे के लिए एक झटका है। यह संशोधन राज्य सूचना आयोग में दिए जाने वाले वेतन के लिए दो व्यवस्थाएं तय करेगा। एक आरटीआई अधिनियम की धारा 27 (2) के तहत राज्य सूचना आयोग के कर्मचारियों के लिए राज्य सरकारों द्वारा तय किया जाने वाला वेतन और दूसरा राज्य सूचना आयुक्तों के लिए केंद्र सरकार द्वारा तय किया जाने वाला वेतन। इसके अलावा, राज्यों में सूचना आयुक्तों के वेतन का भुगतान संबंधित राज्य के समेकित कोष से किया जाता है, जिस पर केंद्र सरकार का कोई नियंत्रण नहीं है। इस प्रकार, आरटीआई संशोधन विधेयक के जरिए केंद्र सरकार राज्य के वित्तीय और कार्यकारी शक्तियों पर नियंत्रण हासिल करने की कोशिश करती है।

आरटीआई संशोधन के लिए मंत्री की तरफ से दिए गए बयान का कोई औचित्य नहीं है। अभी का बयान एनडीए के पहले कार्यकाल के दौरान उठाए गए ऐसे ही मुद्दे पर सरकार के रुख का विरोधाभासी

तर्कहीन हैं सरकार की धारणाएं

केंद्र को लगता है कि आरटीआई अधिनियम 2005 जल्दबाजी में पास किया गया और केंद्रीय सूचना आयुक्त और केंद्रीय निर्वाचन आयुक्त को बराबर मानना गलती था

कानून में संशोधन एनडीए सरकार की चार गलत धारणाओं पर आधारित है

- **एनडीए सरकार** गलत तरीके से सोचती है और कहती है कि आरटीआई संवैधानिक अधिकार नहीं है। यह एक मौलिक अधिकार है, क्योंकि सुप्रीम कोर्ट के कई निर्णय हैं जो बताते हैं कि आरटीआई मौलिक/ संवैधानिक अधिकार है। इस तथ्य को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया।
- **केंद्र को** लगता है कि सीआईसी, चुनाव आयोग जैसी संवैधानिक संस्था नहीं हैं, जो त्रुटिपूर्ण है। असल में, संवैधानिक अधिकार को लागू करने वाली प्रत्येक संस्था एक संवैधानिक संस्था है। संविधान लागू किए जाने के समय ही इसका मूल रूप से उल्लेख किया जाना या अस्तित्व में होना आवश्यक नहीं है।
- **केंद्र को** लगता है कि मुख्य चुनाव आयोग (सीईसी) के साथ केंद्रीय निर्वाचन आयोग (सीईसी) की बराबरी करना एक गलती थी। लेकिन यह कहना गलत है कि दोनों एक रैंक के नहीं हैं, क्योंकि ये दोनों संस्थाएं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के दो हिस्सों को लागू करती हैं। यानी, सीईसी मतदान का अधिकार और सीआईसी सूचना प्राप्त करने का अधिकार सुनिश्चित करता है।
- **केंद्र को** लगता है कि आरटीआई अधिनियम 2005 में जल्दबाजी में पारित किया गया था और जल्दबाजी में सीआईसी को सीईसी के बराबर माना गया। तथ्य यह है कि संसद की स्थायी समिति (पीएससी) ने प्रत्येक प्रावधान पर विस्तृत रूप से विचार किया, सरकारी और गैर सरकारी हस्तियों के साथ चर्चा की, लोगों और अन्य हितधारकों से परामर्श किया, मसौदे पर चर्चा हुई और इस पर विस्तृत बहस हुई। संसद की इस स्थायी समिति में बीजेपी के सदस्य भी शामिल थे। काफी विचार विमर्श के बाद अंततः ईएमएस नचियप्पन की अध्यक्षता वाली पीएससी ने सूचना आयोग को केंद्रीय चुनाव आयोग का दर्जा देने की सिफारिश की थी।

इन कारणों से विधेयक को पास करने का तरीका उचित नहीं है

- **विधेयक को** किसी या व्यक्ति/संस्था के समक्ष परामर्श के लिए नहीं रखा गया था। केंद्रीय या राज्य सूचना आयोग के वर्तमान या अवकाश प्राप्त सूचना आयुक्तों से भी परामर्श नहीं किया गया।
- **अगले दिन** के एजेंडे की घोषणा होने तक विधेयक की प्रति गुप्त रखी गई थी। यानी, बिल की प्रति सदस्यों को उपलब्ध नहीं कराई गई थी, जिसका अर्थ है कि उन्हें प्रस्ताव का विरोध करने या समर्थन करने की तैयारी के लिए कोई समय नहीं दिया गया था।
- **प्रस्तावना और** विचार के बीच, सांसदों को पर्याप्त समय नहीं दिया गया था।
- **सदन के** सदस्यों को इस बात से गुमराह रखा गया कि आखिरकार सूचना आयुक्तों को क्या दर्जा दिया जाएगा, उनका कार्यकाल क्या होगा। 2005 में संसद ने सूचना आयोग को चुनाव आयोग का दर्जा दिया था और दोनों को सुप्रीम कोर्ट के जज के बराबर वेतन दिए जाने की बात की थी। सूचना आयुक्तों के इस निश्चित कार्यकाल और निश्चित वेतन को खत्म करने जैसा कदम एनडीए सरकार की कथित गलत धारणाओं की वजह से सामने आई है। यह कार्यपालिका द्वारा विधायिका की शक्ति को हड़पने जैसा मामला है।
- **सरकार इस** तथ्य को लेकर अनिश्चितता पैदा कर रही है कि सूचना आयुक्तों का दर्जा किस हद तक कम किया जाएगा। इससे सूचना आयुक्तों का कार्यकाल और दर्जा बार-बार बदलने की गुंजाइश बनी रहेगी, जिससे सरकार उन्हें हमेशा दबाव में रखेगी और इसलिए सूचना आयुक्त स्वतंत्र रूप से अपने दम पर कार्य करने की स्थिति में नहीं होंगे।
- **केंद्र ने** दावा किया है कि इससे पारदर्शिता में सुधार होगा, लेकिन खुद इस विधेयक के संबंध में ही कोई पारदर्शिता नहीं है। सीआईसी की स्वतंत्रता को उसके दर्जे को कम करके प्रभावित की गई है, जो आगे चलकर पारदर्शिता को प्रभावित करेगा।

है। केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम की धारा 5 (7) के तहत केंद्रीय सतर्कता आयुक्त का वेतन-भत्ता संविधान के अनुच्छेद 315 के तहत स्थापित संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष द्वारा लिए जाने वाले वेतन-भत्ते के बराबर है। केंद्रीय सतर्कता आयोग (सीवीसी) के दो आयुक्तों, यूपीएससी के सदस्यों के बराबर वेतन और भत्ते के हकदार हैं। 2017 में एनडीए ने 7वें वेतन आयोग की सिफारिशों को माना और यूपीएससी के सदस्यों का वेतन हाई कोर्ट के न्यायाधीश के बराबर कर दिया गया। यदि सीवीसी, जो संवैधानिक संस्था नहीं है, को यूपीएससी जैसी संवैधानिक संस्था के समान दर्जा दिया जा सकता है, तो यही सिद्धांत आरटीआई अधिनियम के तहत अधिसूचित सूचना आयोगों पर लागू क्यों नहीं किया जा सकता?

मानवाधिकार

1993 में संसद ने सभी राज्यों में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और राज्य मानवाधिकार आयोगों (एनएचआरसी) की स्थापना के लिए प्रोटेक्शन ऑफ ह्यूमन राइट्स एक्ट लागू किया। 8 जनवरी, 1994 को इसकी अधिसूचना जारी की गई थी। यह जम्मू एवं कश्मीर के अलावा सभी राज्यों में लागू हुआ। वहां इस तरह की संस्था 1997 में राज्य विधानमंडल के एक अधिनियम द्वारा बनी। इस अधिनियम के अनुसार, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष भारत के मुख्य न्यायाधीश को मिलने वाले वेतन और सदस्य सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के बराबर वेतन और भत्ते प्राप्त करने के हकदार हैं। एनएचआरसी और सूचना आयोग, दोनों ही वैधानिक संस्था है, जो संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों की रक्षा करते हैं। अतः संशोधन विधेयक को राष्ट्रपति की सहमति नहीं मिलनी चाहिए थी। इसे सेलेक्ट कमेटी या संसद की स्थायी समिति के पास पुनर्विचार के लिए लौटाया जाना चाहिए था। साथ ही, इस पर सभी हितधारकों के साथ उचित परामर्श की भी जरूरत थी। इन सब की अवहेलना सूचना के मौलिक अधिकार पर हमला है।

(लेखक पूर्व केंद्रीय सूचना आयुक्त और बेनेट विश्वविद्यालय में संवैधानिक कानून के प्रोफेसर हैं)

कुंद हुई औजार की धार

सूचना के अधिकार की बदौलत देश में एक नए तरह का एक्टिविजम शुरू हुआ

भागीरथ

बात 13 साल पुरानी है। बिहार के मधुबनी जिले के मच्छी गांव निवासी 70 वर्षीय रिक्शा चालक मजलूम नदाफ इंदिरा आवास योजना के हकदार थे, लेकिन इसके लिए उनसे रिश्वत मांगी जा रही थी। निराश मजलूम ने 7 अप्रैल 2006 को सूचना के अधिकार (आरटीआई) के तहत पूछा कि उन्हें इंदिरा आवास से क्यों वंचित रखा जा रहा है। मजलूम को जवाब तो नहीं मिला लेकिन आरटीआई आवेदन दाखिल करने के 20 दिन बाद खंड विकास अधिकारी (बीडीओ) उनके घर पहुंचे और इंदिरा आवास की पहली किस्त के रूप में 15 हजार रुपए का चेक उनके हवाले कर दिया। मजलूम का मामला उन बेशुमार उदाहरणों में एक है जिनके लिए सूचना का अधिकार किसी वरदान से कम नहीं है।

आरटीआई ने सरकारी दस्तावेजों और सूचनाओं पर जमी धूल और गोपनीयता के पर्दे को हटाने का काम किया है। इस कानून के बनने के बाद देशभर में एक अलग तरह का एक्टिविजम का दौर शुरू हुआ। कानून बनने के अगले ही साल संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) के छात्रों ने सूचना के अधिकार को हथियार बनाकर उत्तर पुस्तिकाएं हासिल करने के लिए आंदोलन शुरू किया। 2006 में यूपीएससी के 2,500 छात्रों ने आरटीआई के जरिए प्रारंभिक परीक्षा के कट ऑफ मार्क्स और अंकों की जानकारी मांगी। केंद्रीय सूचना आयोग (सीआईसी) ने छात्रों के हक में फैसला दिया तो यूपीएसपी उसके खिलाफ उच्च न्यायालय चली गई। हालांकि वहां भी उसे निराशा ही हाथ लगी। उच्च

29 जुलाई को दिल्ली के जंतर मंतर में सूचना के अधिकार में संशोधन के खिलाफ लोगों ने प्रदर्शन किया

विकास चौधरी/ सीएसई

न्यायालय ने 2008 में सीआईसी के फैसले को सही ठहराते हुए आरटीआई के तहत मांगी गई सूचनाएं उपलब्ध कराने का आदेश दिया। यूपीएसएसी के छात्रों को देखकर अन्य राज्यों में प्रतियोगी परीक्षाओं और विश्वविद्यालय के छात्रों ने भी इसका इस्तेमाल शुरू कर दिया। मसलन, कलकत्ता विश्वविद्यालय के छात्र प्रीतम रूज ने आरटीआई के जरिए उत्तर पुस्तिका दिखाने की मांग की थी और उसके खारिज होने पर उच्च न्यायालय में अपील की। पहले एकल बेंच और फिर डबल बेंच ने मार्च 2008 को प्रीतम के पक्ष में फैसला सुनाते हुए कहा, "भारतीय संविधान की धारा 19 के तहत अभ्यर्थियों को उत्तर पुस्तिका देखने का अधिकार है। निरीक्षण न करने देने से अभिव्यक्ति और सूचना के अधिकार का कोई मतलब नहीं रह जाएगा।" इसी तरह केंद्रीय सूचना आयोग ने 2008 में पुदुचेरी विश्वविद्यालय को आदेश दिया कि वह अजय कुमार साहू को उत्तर पुस्तिका दिखाने के साथ, उसकी छायाप्रति भी उपलब्ध कराए। आयोग ने 2007 में केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई) और दिल्ली इंजीनियरिंग कॉलेज को भी उत्तर पुस्तिका दिखाने का आदेश दिया। त्रिपुरा व बिहार सूचना आयोग ने भी छात्रों के हित में आदेश दिए।

छात्रों के एक्टिविजम से इतर देश भर में लोग मनरेगा, राशन, वृद्धावस्था पेंशन, स्कूलों में दाखिले, मिड डे मील के बारे में सूचनाएं मांगने लगे। भ्रष्टाचार के मामलों को उजागर करने के लिए आरटीआई का इस्तेमाल शुरू हुआ। लोगों ने सरकारी दफ्तरों का निरीक्षण शुरू किया और सोशल ऑडिट से भ्रष्टाचार के बहुत से मामले लगातार खुलने लगे। लोग सूचना के अधिकार सड़क निर्माण जैसे सरकारी काम के सैंपल लेकर जांच करने लगे।

आरटीआई आवेदकों को कई मामलों में सूचनाएं तो नहीं मिलीं लेकिन आरटीआई से दबाव पड़ने पर बहुत से काम हो गए। उदाहरण के लिए गुजरात के अमरेली जिले के साल्दी गांव में जब राशन की दुकान से राशन गायब रहने लगा तो 22 साल के भद्रेश वामजा ने सूचना के अधिकार के तहत फरवरी 2011 में पूछताछ की। आरटीआई के बाद तहसीलदार ने दुकान का निरीक्षण किया और पाया कि कई राशन कार्डधारियों को छह महीने से एक दाना अनाज नहीं दिया गया। उन्होंने दुकानदार की रिपोर्ट आपूर्ति अधिकारी को भेजी और जांच का आदेश दिया। भद्रेश की आरटीआई के बाद गुजरात सूचना आयोग ने आदेश दिया कि राज्य भर में राशन से संबंधित सूचनाएं नोटिस बोर्ड पर लगाई जाएं।

इसी तरह लखनऊ में कक्षा चार में पढ़ने वाली छात्रा ऐश्वर्या ने 2009 में अपने स्कूल के सामने कूड़े का ढेर देखा तो नवंबर 2009 में मुख्यमंत्री कार्यालय से शिकायत कर दी। वहां से कोई जवाब न आने पर स्कूल की नोटबुक में ही आरटीआई आवेदन लिखा और इस बारे में पूछताछ की। फरवरी 2010 में ऐश्वर्या को लखनऊ नगर निगम से जवाब आया कि वह जगह सार्वजनिक पुस्तकालय के लिए आरक्षित है। इसलिए महापौर ने उस जगह को साफ करने के आदेश दिए हैं। इसके बाद कूड़े का ढेर साफ कर दिया गया और वहां पुस्तकालय बन गया।

झारखंड में आदिवासी समुदाय को भूमि का हक दिलाने में भी आरटीआई ने भूमिका निभाई। दरअसल, राज्य के टाना भगत समुदाय को भूमि अधिकारों से वंचित रखा जा रहा था। यह देख पूर्व विधायक गंगा टाना भगत ने आरटीआई आवेदन दायर किया। जवाब न मिलने पर मामला राज्य सूचना आयोग पहुंचा जहां सरकारी अधिकारियों से जवाब-तलब किया गया। आयोग में सुनवाई के दौरान अधिकारियों ने कहा कि इस मामले में भू राजस्व अधिकारियों की एक उच्चस्तरीय बैठक की जा रही है जिसमें टाना भगत को भी बुलाया गया है। बैठक में टाना भगत समुदाय को भूमि अधिकार देने का आदेश दिया गया। इसके बाद लोहरदगा, गुमला, लातेहार और पलामू जिले में उन्हें भूमि अधिकार देने की प्रक्रिया शुरू हुई। 30 अगस्त 2009 को 114 परिवारों को भूमि अधिकार मिलने के बाद समुदाय इस दिन को मुक्ति दिवस के रूप में मनाता है। आरटीआई की सफलता की ऐसी दर्जनों कहानियां केंद्रीय सूचना आयोग की रिपोर्ट "ट्रस्ट थ्रू ट्रांसपेरेंसी" में दर्ज हैं।

कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव

सूचनाओं की भूख

कानून बनने के बाद केंद्र सरकार में वर्षवार दायर आरटीआई आवेदन

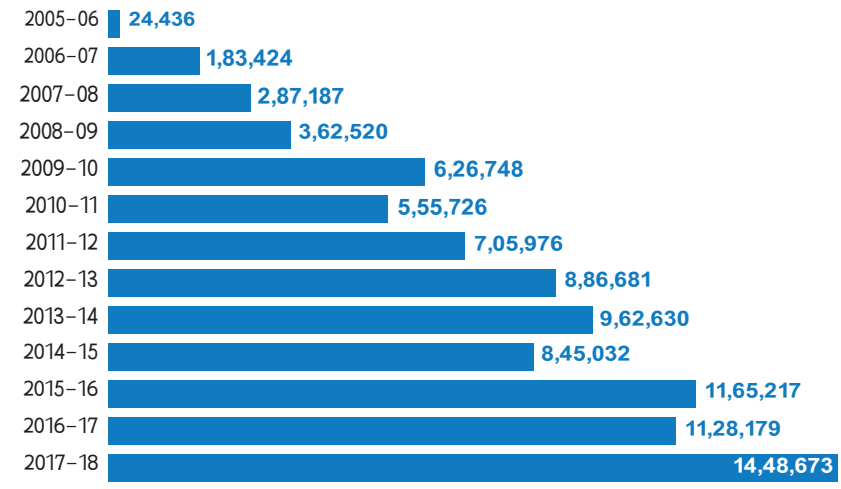

स्रोत: केंद्रीय सूचना आयोग की वार्षिक रिपोर्ट 2017–18

(सीएचआरआई) से जुड़े वेंटकेश नायक बताते हैं कि आरटीआई से पहले लोग अपना काम करवाने के लिए नेताओं और दलालों पर निर्भर थे। यह अब भी चल रहा है लेकिन आरटीआई के बाद नागरिकों के लिए नया औजार मिला और लोग उसका भरपूर फायदा उठाने लगे।

आरटीआई व सामाजिक कार्यकर्ता संतोष कुमार बताते हैं कि इस कानून ने सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर खड़े असहाय और कमजोर वर्ग को भी जानने का वह अधिकार दे गया जो संसद में बैठे सांसदों को है। यही कारण रहा कि सूचना के अधिकार को कानून के रूप मूर्त लेते ही बिना कोई सरकारी प्रचार-प्रसार के गांव-कस्बों तक पहुंचने में वक्त नहीं लगा। आज आरटीआई की लोकप्रियता और उसके इस्तेमाल का अंदाजा इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि 2005-06 में केंद्र सरकार से सूचनाएं मांगने के लिए कुल 24,426 आरटीआई आवेदन दाखिल हुए थे जो 2017-18 में बढ़कर 14,48,673 हो गए *(देखें सूचना की भूख, पेज 23)*। सीआईसी की वार्षिक रिपोर्ट 2017-18 के अनुसार, इन आवेदनों में सर्वाधिक 1,99,923 वित्त मंत्रालय में दायर किए गए। दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय में 1,28,382 आवेदन दायर किए गए और संघ राज्य क्षेत्र दिल्ली से संबंधित 1,19,968 आवेदन प्राप्त हुए।

पूर्व केंद्रीय सूचना आयुक्त शैलेष गांधी बताते हैं कि देश भर में हर साल 60-80 लाख आरटीआई आवेदन दाखिल किए जा रहे हैं। इससे एक बात तो समझी जा सकती है कि लोगों ने आरटीआई को अपना लिया है। हालांकि यह भी सच है कि लोगों ने सूचना की बड़ी कीमत भी चुकाई है। कानून बनने के बाद से अब तक 84 आरटीआई कार्यकर्ताओं की हत्या हो चुकी है और 7 आत्महत्या कर चुके हैं। इसके अलावा 169 लोगों पर हमले और 183 लोगों को प्रताड़ित किया गया *(देखें, सूचना की कीमत)*।

आरटीआई कार्यकर्ता अफरोज आलम साहिल बताते हैं, "यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि आरटीआई ने ही पहली बार देश की आबादी को असली मालिक होने का अहसास दिलाया और जनता ने भी इस अधिकार के प्रयोग में बढ़-चढ़कर भागीदारी की।" आरटीआई से प्राप्त दस्तावेजों पर आधारित पुस्तक "वादा फरामोशी" के लेखक संजॉय बासु मानते हैं कि आरटीआई के रूप में लोगों को ऐसा टूल मिल गया है जिससे सरकार हिलाई जा सकती है। इसने कार्यपालिका और नेताओं को नागरिकों के प्रति जवाबदेह बनाया है। वह बताते हैं, "अधिकांश आरटीआई आवेदन प्रमोशन, सेवा शर्तों, पेंशन की राशि अथवा नीति, तबादले नियम जैसे व्यक्तिगत मामलों की जानकारी के लिए दाखिल किए जाते हैं। केवल 30 प्रतिशत आवेदन जनता से जुड़े मुद्दों और शोध के लिए दाखिल होते हैं।" बासु ने एक उदाहण देते हुए बताया, "मेरा एक दोस्त पीएचडी में अपनी पत्नी का दाखिला कराना चाहता था लेकिन दाखिला प्रक्रिया में भ्रष्टाचार से परेशान था। मैंने उसका आरटीआई आवेदन तैयार कर विश्वविद्यालय से तीन प्रश्न किए। इसका असर यह हुआ कि दोस्त की पत्नी को दाखिला मिल गया जिसे पहले दाखिला देने से मना कर दिया गया था।"

सूचना की कीमत

महाराष्ट्र, गुजरात, बिहार और उत्तर प्रदेश में आरटीआई कार्यकर्ताओं की सबसे अधिक हत्याएं हुईं

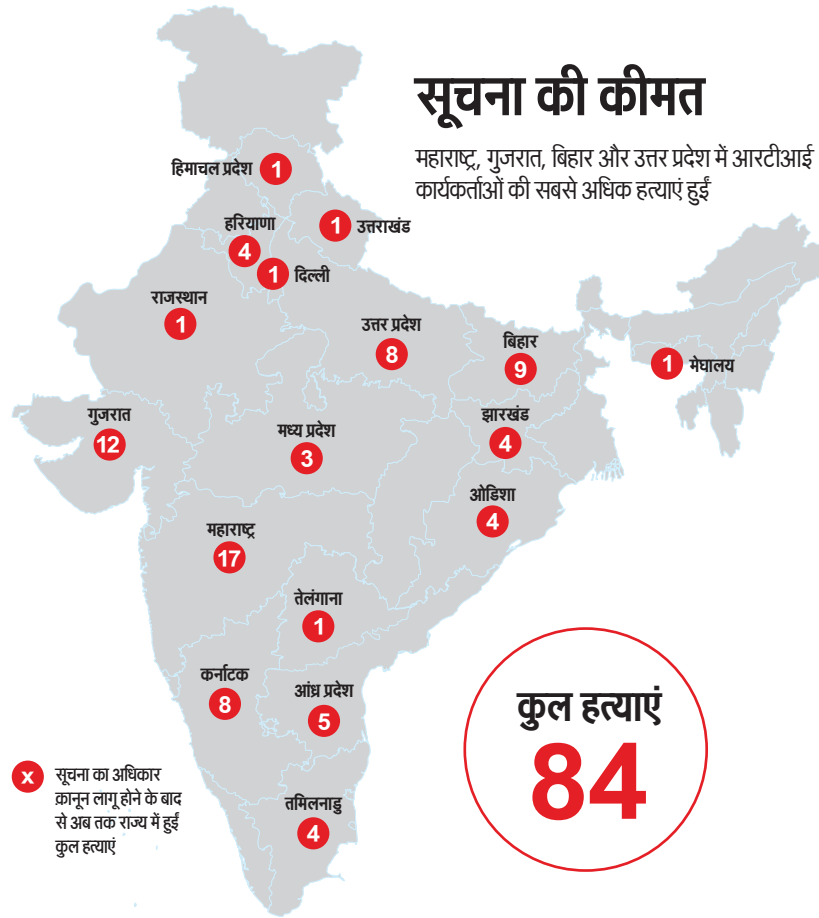

स्रोत: सीएचआरआई द्वारा मीडिया रिपोर्ट्स का संकलन

कानून पर हमला

2005 में बने जिस आरटीआई ने भ्रष्टाचार से लड़ने और सवाल पूछने का अधिकार दिया, अब उसमें संशोधन कर दिया गया है। केंद्र सरकार ने 22 जुलाई को लोकसभा और 25 जुलाई को राज्यसभा में सूचना के अधिकार (आरटीआई) संशोधन विधेयक 2019 पास करा लिया। 1 अगस्त को राष्ट्रपति की मंजूरी मिल गई। इसी के साथ केंद्र और राज्य सूचना आयुक्तों के वेतन भत्तों और कार्यकाल का निर्धारण सरकार के हाथ में आ गया है। हालांकि इससे पहले भी संशोधन के प्रयास किए गए थे लेकिन जबर्दस्त विरोध के कारण सफलता नहीं मिली। सरकार ने 2016 में फाइल नोटिंग्स को आरटीआई के दायरे से बाहर लाने के लिए संशोधन का प्रयास किया। उस समय केंद्रीय सूचना आयुक्त ओपी केजरीवाल ने सरकार के इस प्रयास की कड़ी आलोचना की थी और प्रधानमंत्री को खुली चिट्ठी लिखकर कहा था कि फाइल नोटिंग्स को बाहर करके आरटीआई की आत्मा निकाली जा रही है। इसके बाद भी कानून में संशोधन के कई प्रयास किए गए। मोदी सरकार ने पहले कार्यकाल के आखिरी साल में संशोधन का प्रयास किया था लेकिन चुनाव नजदीक होने के कारण उसे ठंडे बस्ते में डाल दिया था। लेकिन इस बार सरकार पूरी तैयारी के साथ आई और उसके निशाने पर सूचना आयुक्त हैं।

सरकार के इस कदम का देश के अलग-अलग हिस्सों में विरोध शुरू हो गया है। 29 जुलाई को जंतर-मंतर पर आरटीआई कार्यकर्ताओं ने जहां संशोधन का विरोध किया, वहीं मुंबई और पुणे में आरटीआई कार्यकर्ता विरोध की रणनीति बना रहे हैं। तमाम अपीलों के बावजूद राष्ट्रपति ने 1 अगस्त को संशोधनों को स्वीकृति प्रदान कर दी। दरअसल,

राष्ट्रपति कोविंद सूचना आयुक्तों की स्वायत्तता और हिमायती रहे हैं। साल 2004 में आरटीआई विधेयक को जब संसद की स्थायी समिति के पास भेजा गया था, तब कोविंद इस समिति के सदस्य थे। समिति के सदस्यों ने एकराय में सूचना आयुक्तों का पद निर्वाचन आयुक्तों के समतुल्य रखने की सिफारिश की थी ताकि उन्हें सरकारी दबाव से मुक्त रखा जा सके। 2004 के आरटीआई विधेयक में तत्कालीन केंद्र सरकार ने सूचना आयुक्तों का पद केंद्र के सचिवों के समतुल्य रखा रखा था। स्थायी समिति की सिफारिशों के बाद ही सूचना आयुक्तों को निर्वाचन आयुक्तों के समतुल्य रखा गया।

नेशनल कैंपेन फॉर पीपुल्स राइट टु इन्फॉर्मेशन (एनसीपीआरआई) ने कहा है कि आरटीआई में संशोधन से सूचना आयोग कमजोर होगा और वह स्वतंत्र तरीके से काम नहीं कर पाएगा। आरटीआई के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए बहुत से मुद्दों पर ध्यान देने की जरूरत थी, मसलन सूचना आयोग में रिक्त पड़े पदों को भरना, आरटीआई कार्यकर्ताओं की हत्याएं रोकने का प्रयास करना, विसिल ब्लोअर एक्ट को लागू करना और कानून की धारा 4 के कमजोर क्रियान्वयन को मजबूत करना आदि। सरकार ने इन पर ध्यान देने के बजाय सूचना आयोगों

2004 में आरटीआई विधेयक को संसदीय समिति के पास भेजा गया था। समिति ने सूचना आयुक्तों का पद निर्वाचन आयुक्तों के समतुल्य रखने की सिफारिश की थी

की स्वतंत्रता और स्वायत्तता पर हमला कर दिया।

एनसीपीआरआई से जुड़ी अंजली भारद्वाज का कहना है, "सरकार नहीं चाहती कि सूचनाएं बाहर निकलें। अगर आयोग की स्वतंत्रता इस प्रकार खत्म कर दी जाएगी तो कानून बेकार हो जाएगा। अब तक आयोग बिना डर के आदेश देते थे लेकिन संशोधन से उनके अंदर डर बैठ जाएगा।"

शैलेष गांधी सरकार की मंशा पर सवाल उठाते हुए कहते हैं, "पिछले 14 साल में किसी ने कानून में संशोधनों की मांग नहीं की। सरकार ही सूचना आयुक्तों को नियुक्त करती है। उनकी नियुक्ति में कोई पारदर्शिता नहीं होती। अधिकांश आयुक्त सरकार के पक्ष में ही निर्णय देते हैं लेकिन कुछ आयुक्तों के फैसले सरकार के खिलाफ आ जाते हैं। सरकार इसे भी रोकना चाहती है।" वह आगे बताते हैं, "सूचना का अधिकार मौलिक अधिकार है। अगर सरकार इससे छेड़छाड़ कर सकती है तो कल दूसरे अधिकारों से भी छेड़छाड़ कर सकती है। यह लोकशाही के लिए खतरा है।" अफरोज बताते हैं कि सरकार निश्चित तौर पर आरटीआई को अचानक खत्म नहीं कर सकती लेकिन इसके लिए सिस्टम ऐसा जरूर बना दिया जाएगा कि लोग जानकारी मांगने के लिए आरटीआई आवेदन डालना ही छोड़ देंगे। आयोग केंद्र का महकमा बनकर रह जाएगा।

देश के पहले मुख्य केंद्रीय सूचना आयुक्त वजाहत हबीबुल्ला बताते हैं, "आरटीआई में संशोधन समझ से परे हैं। इस संशोधन का दीर्घकालीन असर पड़ेगा। आयुक्त सरकार के दबाव में काम करने लगेंगे। यह सरकार के हित में भी नहीं है। सरकार पारदर्शिता और जवाबदेही की बात कहती है लेकिन अब खत्म किया जा रहा है।"

डाउन टू अर्थ

2.15 करोड़* पेज व्यूज

आपका विश्वास, हमारी सफलता

www.downtoearth.org.in/hindistory

अपनी जिंदगी को प्रभावित करने वाले पर्यावरण, विकास, स्वास्थ्य और कृषि से जुड़े विषयों को समझने के लिए यहां आइए

शिद्दत के साथ, मुद्दे की बात

*आंकड़े जुलाई 2018 से 20 जून 2019 तक

याद आईं 'बिसरी' बेरियां

ऐसा कम ही होता है कि परंपरागत जल स्त्रोतों को सरकारें हाथ लगाएं। राजस्थान सरकार ने भुला दी गई सैकड़ों साल पुरानी पारंपरिक बेरियों के जीर्णोद्धार का जिम्मा उठाया है। **अनिल अश्विनी शर्मा** ने क्षेत्र के 7 जिलों में जमींदोज हो चुकी बेरियों के निर्माण कार्यों को ग्रामीणों की नजरों से देखा-परखा

बाड़मेर राष्ट्रीय राजमार्ग से भारत-पाक अंतरराष्ट्रीय सीमा की ओर बढ़ते हुए अचानक जब सड़क से दाईं तरफ नजर पड़ती है तो दूर तलक तक फैले रेतीले टीलों के बीच एक विशालकाय उथला तालाब दिख पड़ता है। तालाब में एक बारगी नजर पड़ी तो सैकड़ों की संख्या में सुरंग नुमा "गड्ढे" दिखते हैं। बाहरी मानुष के लिए यह केवल एक "गड्ढा" लेकिन यहां की जीवन रेखा "बेरी" है यानी छोटी कुइंया (रेगिस्तानी इलाकों में बारिश के पानी को संचय करने की हजारों वर्ष पुरानी परंपरा)। तालाब के मुंहाने पर खड़े होकर जब दर्जनों बेरियों से औरतें-बच्चे-बुजर्गों को बेरियों से पानी निकालते देखा तो अहसास हुआ कि सचमुच में यह रेगिस्तान की एक अमूल्य धरोहर है। तभी एक नवनिर्मित बेरी से पानी खींचते 72 साल के हरलाल भंवर हांफते हुए बताते हैं, भाई साठेक साल बाद जाकर बेरी के मीठे पानी ने गले को तर किया। आप शहरी लोग या सरकार कितना ही विकास की पीगें क्यों न भर लो लेकिन अंत में तो हमारे सूखे गले को हमारे पुरखों की बनाई बेरी ही तर करती आई है। रामसर गांव के सरपंच महिपाल ने कहा, बेरियों की असलियत जान अब सरकार भी हरकत में आई है। अब राज्य सरकार भी अपनी बीसियों साल से चल रही पानी सप्लाई योजना की जगह खत्म हो चली इन बेरियों को ठीक करने में जुट गई है और अच्छी खासी रकम (प्रति बेरी 80 हजार रुपए) भी खरच रही है। वह बताते हैं कि यहां की बेरियों पर 60 से 65 गांव के लोग पानी लेने आते हैं। आज भी एक बेरी में एक रात रुकने पर सुबह एक बड़े पानी के टैंकर के बराबर पानी रिस-रिस कर एकत्रित हो जाता है।

बाड़मेर के रामसर के पार (पार का मतलब राजस्थान के मरुक्षेत्र की ऐसी जगह, जहां बारिश का पानी रुक कर जमीन के नीचे चला जाता है) यह

राजस्थान के बाड़मेर जिले में स्थित रामसर के पार में खत्म हो चुकी 220 बेरियों में से 117 को चिन्हित किया गया है। इनमें 14 का जीर्णोद्धार हो चुका है, 18 पर काम चल रहा है

विरेंद्र बालाच

पहला गांव है, जहां सरकार ने अब तक (6 अगस्त, 2019) 14 बेरियों का जीर्णोद्धार किया है। इस संबंध में बेरियों के लिए लगातार आवाज उठाने वाले वरिष्ठ पत्रकार बाबू सिंह भाटी ने *डाउन टू अर्थ* को बताया कि पिछले 13 सालों से मैं लगातार स्थानीय प्रशासन से लेकर राज्य सरकार को इस बात के लिए आगाह करता रहा है कि इस क्षेत्र में पारंपरिक बेरी ही ग्रामीणों की प्यास साल भर बुझा पाएगी। लेकिन अब आखिरकार केंद्र सरकार के जल शक्ति अभियान के तहत हमारे इस पार की कुल 220 बेरियों में से 117 बेरी जो खुली (जिन पर रेत नहीं चढ़ पाई है) हुई चिन्हित की गई हैं, उनका जीर्णोद्धार किया जा रहा है। इनमें से 14 का हो गया और 18 पर काम चल रहा है। इनके लिए पैसा भी स्वीकृत (2,40,000 रुपए) हो चुका है। नवनिर्मित बेरी के चबूतरे पर खड़े आत्मा गांव से पानी लेने आए शिक्षक देवाराम चौधरी बताते हैं, यहां के सरहदी गांवों के अधिकांश इलाके का भूमिगत पानी खारा होता है, ऐसे में इन बेरियों से निकलने वाला मीठा पानी हम ग्रामीणों के लिए किसी वरदान से कम नहीं है। वह बताते हैं कि अकेले बाड़मेर जिले में जिला प्रशासन ने 1,750 पुरानी बेरियों को चिन्हित कर उनका जीर्णोद्धार शुरू किया है। इस संबंध में जिलाधीश हिमांशु गुप्ता ने कहा कि यहां 60-60 सालों से बेरियां बंद पड़ी हुई थीं, उन्हें चिन्हित कर जिला प्रशासन उनका जीर्णोद्धार कर रहा है। इससे ग्रामीण जो पैसे देकर टैंकरों के माध्यम से पानी मंगा रहे थे, उन्हें राहत मिलेगी। हमारी जिला परिषद टीम यहां के स्थानीय लागों की मदद से यह काम कर रही है।

अवैज्ञानिक कोशिश

कहने के लिए तो पिछली सरकारों ने भी राजस्थान के सरहदी जिलों में पानी पहुंचाने की अपनी ओर से भरसक कोशिश की। लेकिन उनकी इस कोशिश पर बाबू सिंह कहते हैं, वह कोशिश अवैज्ञानिक थी और वह यहां के भौगोलिक इलाके के अनुरूप न थी। यही कारण है कि कहने के लिए तो यहां के गांवों तक पाइप लाइन बिछा दी गई लेकिन उसमें पानी ही न हो तो फिर क्या लाभ। देश में गहराते जल संकट के हल के लिए केंद्र सरकार की पहल पर राज्य सरकार ने गत एक जुलाई, 2019 से जल शक्ति अभियान शुरू किया। अभियान के तहत जल संरक्षण, परम्परागत जलाशयों का जीर्णोद्धार किया जाएगा। केंद्र सरकार ने देश के 36 राज्यों व संघ क्षेत्रों की 1,593 पंचायत समितियों में 313 क्रिटिकल ब्लॉक्स, 1,186 अति दोहित ब्लॉक्स और 94 न्यूनतम भू-जल उपलब्धता वाले ब्लॉक्स के रूप में पहचान की है। क्षेत्र के सामाजिक कार्यकर्ता राजेंद्र सिंह ने बताया कि राजस्थान के भी तीन दर्जन से अधिक ब्लॉक्स शामिल किए गए हैं। बाड़मेर का रामसर ब्लॉक उनमें एक है। जिलाधीश के अनुसार यहां काम पहले पायलट प्रोजेक्ट के रूप में शुरू किया गया था और उसकी सफलता से उत्साहित होकर अब पूरे जिले की परंपरागत जल स्त्रोतों का जीर्णोद्धार किया जाएगा। अभियान के तहत ब्लॉक और जिला जल संरक्षण योजना का निर्माण को जिला सिंचाई योजना के साथ मर्ज कर दिया गया है। प्रदेश में जल शक्ति अभियान के क्रियान्वयन और मॉनिटरिंग के लिए ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग के प्रमुख को नियुक्त किया गया है।

बूंद-बूंद सहेजती बेरी

राजस्थान के सरहदी इलाकों में परंपरागत जल स्त्रोतों की संरचनाओं की भरमार है। ऐसी ही एक नायाब संरचना है बेरी जो आज भी रेगिस्तानी इलाकों में मीठे पानी का जरिया बनी हुई है

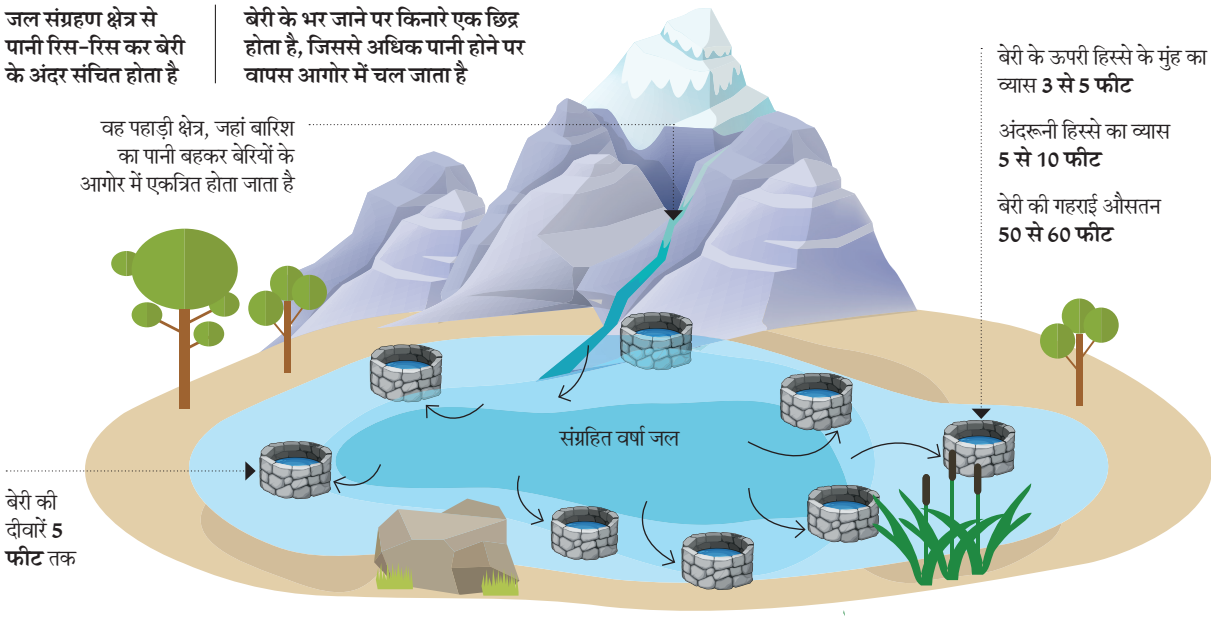

ग्राफिक: संजीत / सीएसई

परंपरागत जल स्त्रोतों की इस योजना को गांव में अमली जामा तो महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा) के माध्यम से ही पहनाया जाएगा। इस संबंध में जोधपुर में जल संरक्षण का काम करने वाले हनुमान सिंह बताते हैं, जब एक अप्रैल, 2008 को यह योजना पूरे देश में लागू की गई थी, तब इस योजना में जल भंडारण के लिए प्रावधान सुनिश्चित किया गया था। इस योजना में केंद्रीय स्तर पर जिन कार्यों की सूची बनाई गई है, उसमें जल संरक्षण एवं जल संग्रहण को प्राथमिकता को पहले नंबर पर रखा गया है। साथ ही इन कार्यों को स्थानीय लोगों द्वारा ही पूरा कराया जाता है। इसके वित्तीय प्रबंध के संबंध में जोधपुर उच्च न्यायालय में पर्यावरण संबंधी विषयों को दायर करने वाले प्रेम सिंह राठौर बताते हैं कि इस राष्ट्रीय योजना में धन का पर्याप्त प्रावधान है। कार्य भी स्थानीय आवश्यकता के अनुरूप करवाया जा रहा है। साथ ही इस कार्य पर पूरी निगरानी रखी जा रही है, स्थानीय समस्याओं पर यदि पूरी तरह से ध्यान दिया जाए तो जल भंडारण के ये ढांचे राजस्थान में नहीं पूरे देश में जल की समस्या के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

जिले के समदड़ी तहसील में जल शक्ति अभियान का काम संभाल रहे जूनियर टेक्निकल असिस्टेंट मनोहर गहलोत ने बताया कि मनरेगा के प्लान स्वीकृत हो चुके हैं। यह गत एक जुलाई को शुरू हुआ था और इसे आगामी 15 सितंबर तक खत्म होना है। अब तक 25 फीसदी काम खत्म हो चुका है। उन्होंने बताया कि जल संचय के लिए तालाब, नाड़ी और टांके आदि के आगोर (कैचमेंट) को बढ़ा रहे हैं। अभियान के तहत आगोर की सफाई की गई है। नाड़ी और तालाब के कैचमेंट से झाड़ियों को हटाया गया है ताकि बारिश का अधिकाधिक पानी आगोर के माध्यम से संग्रहित हो। राज्य के सभी 25 जिलों में जल संचय का काम किया जा रहा है। इसकी रिपोर्ट प्रतिदिन जयपुर भेजी जा रही है। राज्य के पंचायती राज विभाग के ग्राम प्रचार अधिकारी विनोद कुमार ने *डाउन टू अर्थ* को बताया कि जिस प्रकार से आपने पिछले 5 सालों में केवल शौचालय निर्माण व स्वच्छता अभियान देखा था, ठीक उसी प्रकार से इस बार अगले पांच सालों तक आप राजस्थान में केवल जल जीवन मिशन को ही देखेंगे। चूंकि यहां तो एक बार ही मुश्किल से बारिश होती है, उसे कैसे स्टोर किया जाए, स्थानीय लोगों के सहयोग के बिना तो सोच ही नहीं सकते हैं। उनका कहना था कि हम भले ही चार किताबें पढ़ कर डिग्री हासिल कर लें लेकिन असली पारंपरिक ज्ञान तो ग्रामीणों के पास ही है। हम उनसे पूरी मदद लेते हैं। राज्य सरकार ने अब तक की राज्य में पानी से जुड़ी सभी योजनाओं को अब जल शक्ति अभियान से जोड़ दिया है। उन्होंने बताया कि बेरी व टांका के जीर्णोद्धार में एक माह और तालाब का 5 से 6 माह तक का समय लगता है। इसके तहत गाद निकालना और घाट का निर्माण शामिल है। इस अभियान के लिए हर हफ्ते अलग-अलग इलाकों के गांवों में कैंप का भी आयोजन किया जाता है। जिसमें आम लोगों को परंपरागत जल स्त्रोतों में सरकार की भागीदारी के बारे में बताया जाता है और उनसे सुझाव भी मांगा जाता है।

लौटे अपनी परंपरा की ओर

राजस्थान में पानी संकट धीरे-धीरे गहराता जा रहा है। इस संबंध में मीहितिला गांव के 80 वर्षीय बाकाराम कहते हैं, दुनिया पानी के बिना मर जाएगी लेकिन एक राजस्थानी पानी के बिना नहीं मरने वाला क्योंकि

राजस्थान के बाड़मेर जिले के रामसर के पार में हाल में ही एक नवनिर्मित बेरी से मीठा पानी निकालते हरलाल अपने परिवार के साथ

उसने पानी के बिना जीना सीख रखा है। वह अफसोस जताते हैं कि हमारी पानी संजोने की समृद्धता को जाने कौन की नजर आ लगी और देखते ही देखते क्या शहर- क्या गांव सब ओर पाइप लाइन बिछ गई। लेकिन क्या यह पानी दे पाई हमें। आखिर हमें एक बार फिर से हजारों साल पुराने परंपरागत जल संचय के स्त्रोतों की ओर निहारना पड़ा। वयुतु गांव के एक अन्य बुजुर्ग हरिराम ने तो यहां तक कह डाला कि बस इस बार अच्छी बात यह हुई कि यह बात अकेले एक ग्रामीण ने न सोची बल्कि देश को बड़ो आदमी तक ने सोची। तभी तो आप देख रहे हो कि इन दिनों गांव-गांव जल संचय करने की पीढ़ियों से भुला दिए गए तौर-तरीकों की अब कलेक्टर भी तारीफ करते नहीं अघा रहा। चटेलाव गांव के 60 वर्षीय भंवरलाल लगभग 70 भेड़ों के मालिक हैं और एक कच्चे घर में अपने बेटे, पत्नी और बुजुर्ग पिता के साथ रहते हैं। चूंकि वे भेड़ पालते हैं तो पीनी की कमी के चलते कई-कई माह तक दूसरे इलाकों में चले जाते हैं अपनी भेड़ों के चारे और पानी के लिए। लेकिन पिछले दो माह से उन्हें अपने घर से बाहर नहीं जाना पड़ा है क्योंकि अब उनके घर के अंदर ही सरकार ने पुराने टांके का जीर्णोद्धार कर दिया है। इसके चलते वह अब उनका और उनकी भेड़ों को इधर-उधर पानी के लिए भटकना नहीं पड़ता है। वह बताते हैं हमारा यह टांका मेरे पिता के समय का है लेकिन जब से पाइप लाइन आ गई थी तो हमने इसका रख-रखाव करना ही छोड़ दिया था। इसके चलते यह धसक गया। लेकिन पिछले कुछ सालों से पाइप लाइन का पानी बराबर नहीं मिलता था, ऐसे में एक हजार रुपए टैंकर वाले को देना पड़ता था, जब वह पानी देता था।

गौरवशाली परंपरा

राजस्थान की जल संचयन की इतनी गौरवशाली परंपरा आखिर बिखर कैसे गई। इस संबंध में रामसर के भवरलाल सिंह कहते हैं, इसका असली कारण है कि हम बदल गए। जब हम बदल गए तो धरती कैसे न बदलेगी। यहां इतना पानी था कि हम चार-चार साल तक पुराना अनाज खाकर थकते न थे। सरकार ने विकास के नाम पर हमारे गांव में पंप लगा दिए और इसके बाद पाइप लाइन बिछा दी। फिर क्या था हर कोई इसी पर निर्भर हो गया। किसी ने बेरियों के रख-रखाव पर ध्यान न दिया। जब तक हमने अपनी बेरियों का संवारा तब तक वह जीवित रहीं लेकिन इसके बाद वे रेतीले अंधड़ों में गुम हो गईं। मजल गांव के हरिभवंर बताते हैं, जब से बेरियां खत्म हुईं, हम मीठे पानी के लिए तरस गए और अब जब एक फिर से बेरियों को हम सरकार के साथ मिलकर पुनर्जीवित कर रहे हैं तो बरसों पुराना मीठा पानी हमारी प्यास बुझा रहा है। वह कहते हैं, आधुनिकता अच्छी बात है लेकिन उसके पीछे अंधे होकर भागना अच्छा नहीं है। आखिर हमारी आजकल की पढ़ाई ऐसी है जिसके चलते हम पुरानी परंपराओं से दूर होते जा रहे हैं और इसी का नतीजा है कि अब हमारे पास अधिक संसाधन होने के बावजूद पहले के मुकाबले अधिक गरीब व लाचार नजर आते हैं। उनके साथी गजेंद्र सिंह कहते हैं अब हमारी जेब में पैसा होता है, लेकिन मीठे पानी के लिए सालों से तरस रहे हैं। आखिर जब हम अपनी जड़ों से कट जाएंगे तो कैसे तरक्की कर पाएंगे। वहीं इसी गांव के हरिभंवर ने बताया कि यहां इतने विदेशी पर्यटक आते हैं, वे इन टूटी-फूटी बेरियों को देखते हैं तो सवाल करते हैं कि आपके पास तो आल रेडी मिनरल वाटर है, फिर क्यों आप लोग बाजार से बीस रुपए की महंगी बोतल खरीदते हो? वह कहते हैं यह हम सब के लिए एक यक्ष प्रश्न है कि एक बाहरी आकर हमें हमारी परंपराओं को याद दिला रहा है।

बेरियों का जीर्णोद्धार बाड़मेर,जैसलमेर, बीकानेर, जोधपुर में चल रहा है। पश्चिमी राजस्थान के अन्य जिलों जैसे जालोर, पाली, सिरोही आदि में भी अन्य परंपरागत जल स्त्रोतों को चिन्हित करने का काम चल रहा है। जोधपुर के मलानावास गांव के राज सिंह कहते हैं, वास्तविकता तो यह है कि परंपरागत जल स्त्रोतों के जीर्णोद्धार के चलते सबसे अधिक लाभ तो हम जैसे गरीब मजदूर को हुआ है। आखिर जब ये स्त्रोतों नहीं थे तो हमें हर हफ्ते टैंकर से पानी खरीदना पड़ता था। गांव के ही बुजुर्ग प्रताप सिंह कहते हैं वास्तव में परंपरागत हमारे जल स्त्रोत तो हमारे सामाजिक जीवन के तानाबाना थे। इसके चलते गांव में कभी किसी प्रकार झगड़ा फसाद नहीं होता था क्योंकि इन जल स्त्रोंतों के चलते सभी एक-दूसरे के पूरक बने हुए थे। यही नहीं इन स्त्रोंतो ने हमारी धरती को भी नम करके रखते हैं और इसका परिणाम होता है कि जितना भी बड़ा जल संकट क्यों न हो हमें अपनी बेरियों पर आंख मूंदकर विश्वास करते हैं कि वह हमें हर हाल में जीवित रखेंगी।

आवरण कथा

कीटनाशकों का बढ़ता उपयोग हिमाचल प्रदेश जैसे पहाड़ी राज्यों में पारिस्थितिक तंत्र बिगाड़ रहा है

विकास चौधरी / सीएसई

मरुस्थलीकरण की जद में

भारत मरुस्थलीकरण से सबसे बुरी तरह प्रभावित देशों में शामिल है। देश के कुल क्षेत्रफल का करीब 30 प्रतिशत हिस्सा इसकी चपेट में है। यह भविष्य में खाद्य संकट का बड़ा कारण बन सकता है। गरीबी और भुखमरी से जूझ रहे देश में फिलहाल इस संकट से उबरने की कोई स्पष्ट रणनीति नजर नहीं आ रही है। *डाउन टू अर्थ* के संवाददाता **कुंदन पांडेय, अर्नब प्रतिम दत्ता, जितेंद्र, ईशान कुकरेती** और **शगुन कपिल** ने देश के अलग-अलग हिस्सा में जाकर इस संकट की पड़ताल की

हर साल मॉनसून के दौरान हेमंत वामन चौरे को एक विकट समस्या का सामना करना पड़ता है। एक तरफ वह चाहते हैं कि बारिश आए, ताकि उनकी फसलों को पानी मिल सके। लेकिन, दूसरी तरफ वह इससे डरे हुए भी रहते हैं क्योंकि बरसात की रिमझिम फुहार भर से उनके खेतों में लगी पौध बर्बाद हो सकती है। महाराष्ट्र के धुले जिले में स्थित सकरी ब्लॉक के देरगांव में रहने वाले 35 वर्षीय चौरे का 1.5 हेक्टेयर खेत सह्याद्री पर्वत श्रृंखला के ढलान पर है। यह क्षेत्र बंजर जमीन और पेड़ों की कमी के लिए जाना जाता है। चौरे के खेत के आसपास सारे इलाके में मिट्टी की सतह काफी उथली है। यहां औसतन सालाना बरसात रेगिस्तानी राज्य राजस्थान से महज थोड़ा-सी अधिक 674 मिमी होती है। जब भी बारिश होती है, तो पहाड़ी ढलानों से बहता हुआ पानी मिट्टी की ऊपरी परत को धुलते हुए खेत के पौधों को भी बहा ले जाता है। चौरे बताते हैं, "2018 में मुझे दो बार पौधे रोपने पड़े। पहले मैंने सोयाबीन लगाई। लेकिन, जब वह बह गई तो मुझे बाजरा (मोती बाजरा) की फसल लगानी पड़ी।"

संयुक्त राष्ट्र (यूएन) के अनुसार, ये मरुस्थलीकरण के स्पष्ट संकेत हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें शुष्कभूमि अपनी उत्पादकता खो देती है। इसमें पौधों को सहारा देने, अन्न उत्पादन करने, आजीविका उपलब्ध कराने की जमीन की क्षमता खत्म होने लगती है। पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं जैसे कि जल प्रबंधन प्रणाली और कार्बन के भंडारण पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है। हालांकि, मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया पूरे इतिहास में होती रही है, लेकिन चिंताजनक बात यह है कि हाल के दशकों में इसकी गति ऐतिहासिक दर से 30 से 35 गुना तेज हो गई है।

संयुक्त राष्ट्र का अनुमान है कि हर साल करीब 12 मिलियन हेक्टेयर जमीन मानव निर्मित रेगिस्तान में तब्दील होती जा रही है। दुनिया की कुल कृषि योग्य भूमि का एक चौथाई हिस्सा अत्यधिक निम्नीकृत (डिग्रेडेड) हो चुका है। अधिकतर शुष्कभूमि (दुनिया भर में करीब 72 फीसदी) में बहुत कम और अनियमित वर्षा होती है। खासकर विकासशील देशों में ये जगहें मरुस्थलीकरण के लिहाज से बेहद संवेदनशील हैं। एशिया और अफ्रीका की लगभग 40 फीसदी आबादी ऐसे क्षेत्रों में रह रही है, जहां लगातार मरुस्थलीकरण का खतरा बना हुआ है (देखें, *निजी क्षेत्र की भागीदारी जरूरी, पेज 37*)। इनमें से अधिकतर लोग कृषि और पशुओं के पालन-पोषण पर निर्भर हैं।

मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया पूरे इतिहास में होती रही है, लेकिन चिंताजनक बात यह है कि हाल के दशकों में इसकी गति ऐतिहासिक दर से 30 से 35 गुना तेज हो गई है

मरुस्थलीकरण की गंभीर होती समस्या पर विचार विमर्श करने के लिए संयुक्त राष्ट्र का कन्वेंशन टु कॉम्बैट डेजर्टिफिकेशन (यूएनसीसीडी) का सीओपी-14 (कॉन्फ्रेंस ऑफ पार्टीज) 2 से 13 सितंबर के बीच भारत में होगा। इसमें 196 देशों के करीब 3,000 प्रतिनिधि पहुंचेंगे जिनमें वैज्ञानिक, नौकरशाह, गैर सरकारी संस्थाएं, राजनेता और औद्योगिक घरानों के प्रतिनिधि मुख्य रूप से होंगे।

भारत के लिए स्थितियां विशेष रूप से अधिक चिंताजनक हैं इसलिए हैं क्योंकि यहां विश्व की लगभग 18 प्रतिशत जनसंख्या और 15 प्रतिशत पशुओं को आश्रय मिलता है। दुनिया के कुल भू-भाग के महज 2.4 फीसदी क्षेत्र वाले इस देश पर 195 मिलियन कुपोषित लोगों के साथ ही वैश्विक भुखमरी के एक चौथाई हिस्से का बोझ भी है। हाल ही में पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने ऊर्जा एवं संसाधन संस्थान, नई दिल्ली से भारत में भू-क्षरण अथवा क्षरण से हो रहे नुकसान का आकलन करने के लिए कहा। अध्ययन के बाद लगाए गए अनुमान के मुताबिक, भू-क्षरण की वजह से देश के राजकोष को 48.8 बिलियन अमेरिकी डॉलर की चपत लग रही है। यह 2014-15 में भारत की जीडीपी के लगभग 2.08 फीसदी के बराबर है, जबकि उसी वर्ष के कृषि और वानिकी क्षेत्रों के सकल मूल्य से यह 13 प्रतिशत से भी अधिक है। (देखें, *मरुस्थलीकरण से मुक्ति का वैश्विक अर्थशास्त्र, पेज 42*)

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के अहमदाबाद स्थित अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंद्र (एसएसी) द्वारा प्रकाशित मरुस्थलीकरण एवं भू-क्षरण एटलस के मुताबिक, देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का करीब 30 फीसदी हिस्सा (लगभग 96.40 मिलियन हेक्टेयर) भू-क्षरण की चपेट में है। 228.3 मिलियन हेक्टेयर यानी देश की कुल भूमि के 70 फीसदी हिस्से में फैले शुष्क भूमि वाले क्षेत्र में से 82.64 मिलियन हेक्टेयर जमीन पर मरुस्थलीकरण हो रहा है। यह भारत के कुल भू-भाग का करीब एक चौथाई हिस्सा है। 76 में से 21 सूखाग्रस्त जिलों और लेह जिले के 2 उप-बेसिन में 50 फीसदी से अधिक क्षेत्र में भू-क्षरण हो रहा है।

एसएसी की तरफ से किए गए सर्वेक्षण के अनुसार, 2003-05 और 2011-13 के बीच, महज 8 वर्षों में ही मरुस्थलीकरण और भू-क्षरण की प्रक्रिया में क्रमशः 1.16 मिलियन हेक्टेयर और 1.87 मिलियन हेक्टेयर की बढ़ोतरी दर्ज की गई। नौ जिलों में भू-क्षरण की दर में 2 फीसदी से अधिक की वृद्धि दर्ज की गई। तुलनात्मक तौर पर, यूरोपीय संघ की तरफ से तैयार किए गए विश्व मरुस्थल मानचित्र के आंकड़ों से पता चलता है कि दुनिया भर में 1950 के दशक के बाद से शुष्क भूमि में लगभग 0.35 फीसदी की बढ़ोतरी हुई है।

ऐसे में सवाल उठते हैं कि आखिर भारत में इतनी तेजी से बढ़ते मरुस्थलीकरण की वजह क्या है? कृषि पर निर्भर देश के 61 फीसदी से अधिक लोग इस चुनौती से कैसे निपटें? ऐसे समय में, जब देश जलवायु से संबंधित तीव्र घटनाओं जैसे कि लू, बार-बार पड़ रहे सूखे, अत्यधिक बारिश और भीषण चक्रवातों का सामना कर रहा है, तो क्या जैव विविधता इसका

ईशान कुकरेती / सीएसई

सामना करने में सक्षम है? इन सवालों के जवाब खोजने के लिए *डाउन टू अर्थ* ने देश भर में भू-क्षरण वाले प्रमुख क्षेत्रों की यात्रा की।

कम बारिश ने बढ़ाई समस्या

महाराष्ट्र के धुले जिले में 64.2 फीसदी भू-क्षरण की चपेट में है। 5,200 हेक्टेयर भूमि का क्षरण महज 8 वर्षों में हुआ है। महाराष्ट्र वन विभाग के आंकड़ों के अनुसार, धुले के 7,195 वर्ग किमी के भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 28 प्रतिशत भाग वन विभाग के अधीन है। लेकिन, 2017 में फॉरेस्ट सर्वे ऑफ इंडिया द्वारा प्रकाशित नवीनतम "स्टेट ऑफ फॉरेस्ट रिपोर्ट" के मुताबिक, केवल 308 वर्ग किमी या 4.2 प्रतिशत क्षेत्र में ही वन आच्छादित हैं। सतपुड़ा के उत्तरी ढलान पर जंगलों में सागौन और ऐसे ही दूसरे व्यावसायिक महत्व वाले पेड़ हैं। वन विभाग हर साल इन पेड़ों को काटने के लिए परमिट देता है। ऐसे ही परमिट के जरिए 2005 से 2014 के बीच एक लाख से अधिक पेड़ काट दिए गए। वहीं, 2.6 लाख पेड़ अवैध रूप से काटे गए।

वन विभाग के वरिष्ठ अधिकारी बताते हैं, "2008 से 2010 के बीच का समय इस लिहाज से सबसे बुरा था। इस दौरान कानूनी तरीके से कहीं ज्यादा पेड़ अवैध तरीके से काटे गए।" धुले में यह एक बड़ी समस्या रही कि अजैविक और जैविक दोनों तरह के दबावों के चलते नए जंगल पनप नहीं सके। जंगल की आग ने मौजूदा पेड़ों की सेहत बिगाड़ दी और नए बीजों को अंकुरित होने से रोक दिया।

नागपुर स्थित महाराष्ट्र रिमोट सेंसिंग एप्लीकेशन सेंटर के एसोसिएट साइंटिस्ट प्रशांत राजेनकर कहते हैं, "बारिश के साथ अब हालात बहुत खराब होने वाले हैं। वह बताते हैं, "क्षेत्र के अधिकतर हिस्से में बारिश की वजह से मिट्टी की ऊपरी परत का कटाव हो रहा है। इसका मतलब यह है कि धीरे-धीरे यहां की मिट्टी की ऊपरी परत खत्म हो रही है।" जिले में 34.95 फीसदी भू-क्षरण के लिए वनस्पति क्षरण जिम्मेदार है, इसके बाद 23.75 फीसदी भू-क्षरण जल क्षरण की वजह से होता है।

झारखंड की हालत सबसे बदतर

धुले की तरह ही झारखंड के अधिकांश हिस्सों में मिट्टी के कटाव के लिए लहरदार भौगोलिक स्थिति एक प्रमुख कारक है। 2015 में झारखंड पर नीति आयोग की एक रिपोर्ट में कहा गया है, "राज्य की लहरदार भौगोलिक स्थिति और बारिश आधारित कृषि ने मिट्टी के भारी भू-क्षरण, विविध कृषि पद्धतियों और कम उत्पादकता को बढ़ावा दिया है। झारखंड राजस्थान, दिल्ली, गुजरात और गोवा के अलावा उन पांच राज्यों में एक है, जहां कुल भौगोलिक क्षेत्र का 50 प्रतिशत हिस्सा बंजर और भू-क्षरण के अंतर्गत आता है।

झारखंड के गिरिडीह जिले के कुल भौगोलिक क्षेत्र का सर्वाधिक 73.79 प्रतिशत हिस्सा भू-क्षरण की चपेट में है। यह धनबाद के खनन वाले इलाके का हिस्सा है, जहां देश में सबसे अधिक कोयला खदान के पट्टे (131) हैं और 500 से अधिक छोटी खनिज खदानें हैं। 2005 और 2017 के बीच की "वन राज्य" रिपोर्ट से पता चलता है कि गिरिडीह के कुल भौगोलिक क्षेत्र की तुलना में जंगल के क्षेत्रफल का प्रतिशत थोड़ा बढ़ा है। यह 2005 में 820 वर्ग किमी था, जो 2017 में

झारखंड उन पांच राज्यों में एक है, जहां कुल भौगोलिक क्षेत्र का 50 प्रतिशत हिस्सा बंजर और भू-निम्नीकरण के अंतर्गत आता है। राज्य का गिरिडीह जिला मरुस्थलीकरण से सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्रों में शामिल है

बंजर राज्य

भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग 30 फीसदी क्षेत्र मरुस्थलीकरण की चपेट में है। 30 राज्यों* में से 26 राज्यों में 2003–05 से 2011–13 के बीच मरुस्थलीकरण का क्षेत्र बढ़ा है

क्षेत्र, जहां भू क्षरण का स्तर काफी बढ़ गया है या 2003–05 से 2011–13 के दौरान नई भूमि का क्षरण हुआ है

इन्फाग्राफिक : संजीत कुमार
स्रोत : भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) द्वारा जुलाई 2016 में जारी भारत का मरुस्थलीकरण एवं भू–क्षरण एटलस

*दिल्ली और जम्मू एवं कश्मीर शामिल

2011-2013

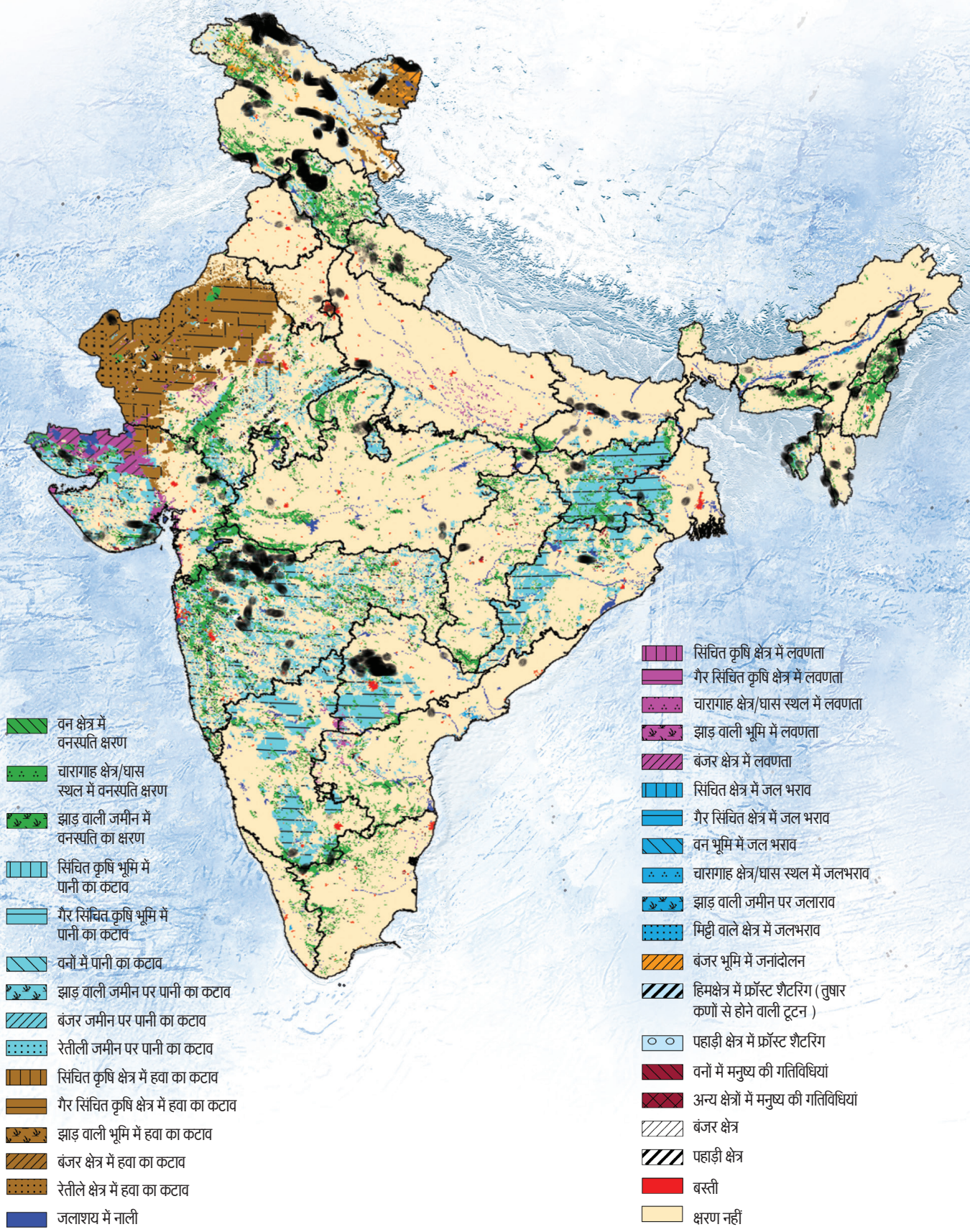
वन क्षेत्र में वनस्पति क्षरण
चारागाह क्षेत्र/घास स्थल में वनस्पति क्षरण
झाड़ वाली जमीन में वनस्पति का क्षरण
सिंचित कृषि भूमि में पानी का कटाव
गैर सिंचित कृषि भूमि में पानी का कटाव
वनों में पानी का कटाव
झाड़ वाली जमीन पर पानी का कटाव
बंजर जमीन पर पानी का कटाव
रेतीली जमीन पर पानी का कटाव
सिंचित कृषि क्षेत्र में हवा का कटाव
गैर सिंचित कृषि क्षेत्र में हवा का कटाव
झाड़ वाली भूमि में हवा का कटाव
बंजर क्षेत्र में हवा का कटाव
रेतीले क्षेत्र में हवा का कटाव
जलाशय में नाली
सिंचित कृषि क्षेत्र में लवणता
गैर सिंचित कृषि क्षेत्र में लवणता
चारागाह क्षेत्र/घास स्थल में लवणता
झाड़ वाली भूमि में लवणता
बंजर क्षेत्र में लवणता
सिंचित क्षेत्र में जल भराव
गैर सिंचित क्षेत्र में जल भराव
वन भूमि में जल भराव
चारागाह क्षेत्र/घास स्थल में जलभराव
झाड़ वाली जमीन पर जलाराव
मिट्टी वाले क्षेत्र में जलभराव
बंजर भूमि में जनांदोलन
हिमक्षेत्र में फ्रॉस्ट शैटरिंग (तुषार कणों से होने वाली टूटन)
पहाड़ी क्षेत्र में फ्रॉस्ट शैटरिंग
वनों में मनुष्य की गतिविधियां
अन्य क्षेत्रों में मनुष्य की गतिविधियां
बंजर क्षेत्र
पहाड़ी क्षेत्र
बस्ती
क्षरण नहीं

मिथुन / सीएसई

आंध्र प्रदेश के अनन्तपुरमु जिले में भू-क्षरण ने एक दुष्चक्र बना रखा है। रेत के टिब्बों ने खेतों को लील लिया है। इस जिले में हमेशा से पानी की अनिश्चितता और सूखे की स्थिति बनी रही है

890 वर्ग किमी हो गया। जबकि बेहद घना वन क्षेत्र 98 वर्ग किमी से घटकर 77 वर्ग किमी रह गया है। वनों के घटने का मरुस्थलीकरण से सीधा संबंध है।

खनन और शहरीकरण

खनन और बढ़ते शहरीकरण ने गोवा जैसी जगहों में भी भू-क्षरण को बढ़ावा दिया है। भारत के इस सबसे छोटे राज्य के दो जिलों में से एक उत्तर गोवा के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 50 प्रतिशत से अधिक इलाका भू-क्षरण के तहत आता है। वनस्पति आवरण नहीं होने की वजह से लगभग 43 प्रतिशत क्षेत्र भू-क्षरण का शिकार है। इस जिले में राज्य की लगभग 50 प्रतिशत खानें हैं।

गोवा के खान भूविज्ञान निदेशालय के अनुसार, 2011 में जब एटलस के लिए मूल्यांकन शुरू हुआ, तो जिले की अधिकांश खदानें केवल दो तालुकाओं बिचोलिम (27 खान) और सत्तारी (11 खान) में मौजूद थीं। बिचोलिम के बाहर खनन विरोधी कार्यकर्ता रमेश गौंस का कहना है कि जब बारिश होती है, तो खदानों के आसपास का क्षेत्र खनन वाली मिट्टी से लाल हो जाता है। वह कहते हैं कि ढाई से तीन टन मिट्टी की खुदाई से एक टन अयस्क निकलता है। यह मिट्टी ज्यादातर राजस्व और कृषि भूमि पर खदान के पट्टे वाले क्षेत्र के बाहर डाली जाती है। आधिकारिक तौर पर 2006 और 2012 के बीच लगभग 1,513 हेक्टेयर जंगल काट दिए गए। अवैध खनन के कारण वनों की कटाई का कोई आंकड़ा नहीं है। पर्यावरण समूह फेडरेशन ऑफ रेनबो वॉरियर्स के अभिजीत प्रभुदेसाई कहते हैं, "गोवा वन विभाग संरक्षित क्षेत्रों के बाहर जंगल के 50 प्रतिशत हिस्से को जंगल नहीं मानता। गोवा के वन आंकड़े भारत के वन सर्वेक्षण के आंकड़ों के साथ मेल नहीं खाते।"

गोवा बचाओ अभियान की सचिव रेबोनी साहा कहती हैं, "गोवा के अधिकांश राजनेताओं ने जमीन के बड़े-बड़े पट्टे खरीदे हैं, ताकि उन्हें रियल एस्टेट और पर्यटन के लिए विकसित किया जा सके। अगर उन्हें वन क्षेत्र घोषित कर दिया गया तो उनके मंसूबों पर पानी फिर जाएगा।" साहा का कहना है कि गोवा में शहरीकरण तेज गति से बढ़ रहा है और सरकार व्यावसायिक गतिविधि को बढ़ावा देने के लिए आसानी से भूमि उपयोग को बदलने की अनुमति दे रही है। योजनाओं की कमी की वजह से भूमि का सबसे बड़ा क्षरण हो सकता है।

हवा से मिट्टी का कटाव

बार-बार सूखे की वजह से बदनाम आंध्र प्रदेश के अनन्तपुरमु जिले में भू-क्षरण ने एक दुष्चक्र बना रखा है। इस जिले में हमेशा से पानी की अनिश्चितता और सूखे की स्थिति बनी रही है। लेकिन हाल के दशकों में इस क्षेत्र में बहने वाली हवाएं कुछ ज्यादा गर्म और भयंकर हो गई हैं। बारिश काफी कम और अनियमित हो गई है। जमीन के नीचे का पानी तो बिलकुल ही गायब हो गया है। दरगाह होन्नुर गांव में रहने वाली 75 वर्षीय बी टिप्पा का करीब दो हेक्टेयर का खेत बालू के टीले के समीप है। टिप्पा को नहीं पता कि हवा से कैसे बचाव किया जाए। शाखाओं और टहनियों के साथ बड़े करीने से बंधी बाड़ की तरफ इशारा करते हुए वह कहती हैं, "मैं नहीं जानती कि मेरी बाड़ कितने लंबे समय तक फसल को रेत में दबने से बचा

निजी क्षेत्र की भागीदारी जरूरी

मरुस्थलीकरण से बचने के लिए हमारे पास अभूतपूर्व अवसर है। इसमें निजी क्षेत्र को आगे आकर पहल करनी होगी। किसान और किसान को-ऑपरेटिव इसमें अहम भूमिका निभा सकते हैं

इब्राहिम चाइ

हम उपजाऊ भूमि की अधिकता को हल्के में ले लेते हैं और इसका महत्व नहीं समझते। यह सोच लेते हैं कि खराब हो चुकी भूमि अपना इलाज खुद कर लेगी। लंबे समय तक खाली छोड़ देने से यह अपने आप ठीक हो जाएगी। लेकिन हकीकत में ऐसा नहीं है। हाल ही में किए गए चार स्वतंत्र अध्ययन बताते हैं कि खराब हो चुकी भूमि की उपजाऊ क्षमता उतनी तेजी से वापस नहीं आ रही जितने की उम्मीद थी। इसके कारण और प्रभाव अब स्थानीय स्तर तक सीमित नहीं रह गए हैं बल्कि वैश्विक रूप ले चुके हैं। अत: इसे ठीक करने की जिम्मेदारी उन सभी की है जो उन चीजों का उपभोग कर रहे हैं जो स्थानीय तौर पर उत्पादित नहीं होतीं। इससे निपटने के लिए इसमें निजी क्षेत्र को भी शामिल होना होगा क्योंकि सरकार अकेले यह नहीं कर सकती। साथ ही समुदायों को भी लापरवाही से बचना चाहिए।

दुनियाभर में बढ़ती जागरुकता और पर्यावरण को बचाने के लिए कार्रवाई की मांग उठने के कारण यह भूमि संबंधी योजना और प्रबंधन में बदलाव का सही समय है। इसके लाभ दूरगामी और वैश्विक हैं। मेरे दावे को समझने के लिए पहले यह समझने की जरूरत है कि विज्ञान क्या कहता है। दुनियाभर के 1.3 बिलियन के ज्यादा लोग भूमि ह्रास से सीधे तौर पर प्रभावित हुए हैं, लेकिन इसका असर 3 .2 बिलियन से अधिक लोगों पर पड़ा है। यह दुनिया की आबादी का लगभग आधा है। इसके अलावा, दुनिया के 2 बिलियन से अधिक लोग शुष्क भूमि क्षेत्रों में रहते हैं। 25 वर्ष पहले समझौता वार्ता के समय शुष्क भूमि कन्वेंशन का मुख्य लक्ष्य थी। अन्य भूमि व्यवस्थाओं की तुलना में इस भूमि पर ह्रास (इसे मरुस्थलीकरण कहा गया है) का सबसे ज्यादा खतरा है। फिर भी पिछले दो वर्षों के मूल्यांकन दर्शाते हैं कि 23 प्रतिशत भूमि खराब हो गई है जिसमें से ज्यादातर भूमि शुष्क क्षेत्रों से बाहर है। यह प्रति 4 से 5 हेक्टेयर भूमि में से एक हेक्टेयर के बराबर है। इसके अलावा 75 प्रतिशत भूमि की प्राकृतिक स्थिति में बदलाव आया है। यह प्रत्येक 4 हेक्टेयर उपजाऊ भूमि में से 3 हेक्टेयर के बराबर है। यह परिवर्तन पिछले 50 वर्षों में हुआ है और वह भी मुख्यत: कृषि क्षेत्र में।

तारिक अजीज / सीएसई

इन परिवर्तनों ने भूमि के लचीलेपन को प्रभावित किया है। इससे बाढ़, अकाल और जंगलों में आग का खतरा बढ़ गया है। प्राकृतिक आवास के नुकसान का परिणाम जैव-विविधता, भू-जल और मिट्टी की उर्वरता की हानि के रूप में सामने आता है और इससे पौधों में मौजूद कार्बन डाईऑक्साइड और मिट्टी वायुमंडल में घुल जाती है जिससे जलवायु परिवर्तन की स्थिति और गंभीर हो जाती है। लेकिन बदलाव के प्रति राजनीतिक माहौल परिपक्व हुआ है। यदि हम निजी क्षेत्र को कदम उठाने के लिए तैयार कर सके तो हमारे पास परिस्थिति सुधारने का अभूतपूर्व अवसर है। और निजी क्षेत्र के मेरा मतलब सूट-बूट पहने लोगों से नहीं है। इनमें ऐसे किसान और किसान को-ऑपरेटिव शामिल हैं जो अपने परिवार के पालन-पोषण, पैसा कमाने या अपने उत्पाद को बाजार तक पहुंचाने के लिए भूमि की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए संगठित हुए हैं। इसमें वे सभी लोग शामिल हैं जो अपने बुढ़ापे के लिए निवेश निधि में पैसा जोड़ रहे हैं तथा ऐसा फायदा लेने के इच्छुक हैं जिससे उन्हें और उनकी पीढ़ियों को नुकसान न पहुंचे। और हां, इसमें वे कंपनियां भी शामिल हैं जो अब यह समझ चुकी हैं कि भूमि की सेहत की कीमत पर दीर्घकालीन विकास और लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता।

उत्पादक भूमि के उपयोग और प्रबंधन में निवेश केवल पर्यावरण के लिए अच्छा नहीं है। यह हमारे अपने हित में भी है। यह नौकरियां पैदा करने, बीजों को बचाने, ताजे पानी के स्रोतों को पुन: भरने, सुंदर और सुरक्षित घरों का निर्माण करने और बेहतर स्वास्थ्य तथा जीवन की ओर ले जाने का बेहतर जरिया है। यह पर्यावरण नीति का आसानी से मिलने वाला लाभ है और दीर्घकालीन विकास लक्ष्य हासिल करने का सशक्त जरिया है।

खराब हो चुकी भूमि किसी भी समुदाय के कारोबार पर पड़ने वाला बोझ है। लेकिन इस स्थिति को बदला भी जा सकता है। ऐसी भूमि को पुनर्जीवित करके किसानों को फलने-फूलने, समुदायों को आगे बढ़ने, निजी क्षेत्र की वृद्धि और पर्यावरण व्यवस्था को सुधारने में मदद मिलेगी। प्लास्टिक को रोकने के अभियानों, स्कूली बच्चों द्वारा पर्यावरण को बचाने के लिए किए गए विरोध प्रदर्शनों और पर्यावरण संरक्षण में लगे लोगों के प्रभाव ने नए युग का आरंभ किया है तथा यह दर्शाया है कि "सतत जीवन" के लिए प्रतिबद्ध निजी क्षेत्र को किसी भी व्यवसायिक मॉडल का हिस्सा होना चाहिए।

एक ठोस आधार के निर्माण के लिए भारत सहित दुनिया के अनेक देशों में काफी प्रगति हो रही है। उदाहरण के लिए पेरिस समझौते का कार्यान्वयन वास्तव में वर्ष 2020 में शुरू होना है। जैव विविधता के संरक्षण संबंधी 2020 के बाद के समझौते को भी उसी दौरान स्पष्ट किया जाएगा। उसके बाद पारिस्थितिकी के पुनर्निर्माण का नया दशक शुरू होगा जो 2021-2030 तक चलेगा और यह भूमि ह्रास निष्पक्षता (एलडीएन) दृष्टिकोण को आगे ले जाने का अच्छा मौका होगा। वह दृष्टिकोण घरेलू स्तर से लेकर वैश्विक स्तर तक फैला हुआ है, जिसके जरिए देश नई भूमि के ह्रास से बचते हैं, खराब हो चुके क्षेत्रों में हानि को कम करते हैं और खराब भूमि को पुनर्जीवित करने की कोशिश करते हैं तथा इसमें शामिल कारकों के लिए अनेक लाभ उपलब्ध कराते हैं। अब बदलाव का समय आ गया है। युवाओं में सहनशीलता नहीं है और निजी क्षेत्र कदम नहीं उठा रहा है। तथापि, जरूरी कार्रवाई करने जैसे भूमि ह्रास को निष्पक्षता से हासिल करना और बॉन चैलेंज के लिए राजनीतिक प्रतिबद्धता अभूतपूर्व है। वैश्विक पर्यावरण में अगुवाई और कार्रवाई के लिए जनता ने इतनी जोर-शोर से पहले कभी मांग नहीं की थी। भारत सभी क्षेत्रों- नीति, प्रौद्योगिकी, अर्थव्यवस्था, उपभोक्ता आधार, खाद्य उत्पादन और सामाजिक कार्यों में दुनिया में सबसे आगे है। यूएनसीसीडी के भावी अध्यक्ष के तौर पर 2021 में सीओपी के लिए मुझे उम्मीद है कि भारत के लोग बड़े पैमाने पर भूमि के पुन: निर्माण की दिशा में व्यापक वैश्विक परिवर्तन की पहल और नेतृत्व करके इतिहास में नाम दर्ज कराएंगे।

(लेखक संयुक्त राष्ट्र के अंडर सेक्रेटरी जनरल और युनाइटेड नेशंस कन्वेंशन टु कॉम्बैट डेजर्टिफिकेशन के कार्यकारी सचिव हैं)

सकती है।" टिप्पा ने अपने भूभाग का एक बड़ा हिस्सा रेत के बढ़ते टीलों की वजह से खो दिया है।

अनंतपुरमू की एक गैर-लाभकारी संस्था, एएफ इकोलॉजी सेंटर के मल्ल रेड्डी ने रेत के टीलों की उत्पत्ति पर अध्ययन किया है। वह कहते हैं कि गांव में रेत के टीले एक प्राकृतिक आपदा का परिणाम हैं, जिसकी वजह से लंबे समय से सूखी पड़ी वेदवती नदी का रिवरबेड स्थानांतरित हो गया। अंततः हवा और पानी के कटाव के कारण रेत के टीलों का निर्माण हुआ। आज, गांव का लगभग 2,000 हेक्टेयर भूभाग रेत के टीलों से घिरा है, जिसकी वजह से युवा इसे "स्थानीय राजस्थान" कहने लगे हैं और फिल्म निर्माता मरुस्थल के दृश्यों के लिए जगह तलाशने आने लगे हैं। टिप्पा का दावा है कि वहां रेत के टीले उनके दादा के जमाने से मौजूद रहे हैं, लेकिन उस समय पेड़ों और झाड़ियों से आच्छादित होने के कारण वे स्थिर थे। रेतीले तूफान हालिया घटनाएं हैं। जगह बदलते रेत के टीलों की वजह से टिप्पा के खेत के केवल एक ही हिस्सा प्रभावित हुआ है, कइयों के तो पूरे के पूरे खेत इन टीलों ने निगल लिए हैं। ऐसे ही लोगों में से 63 वर्षीय केसी नारायणस्वामी हैं। उन्होंने कुछ दशक पहले अपनी 0.8 हेक्टेयर उत्पादक भूमि

तापमान बढ़ने से हिमाचल प्रदेश में हिमपात में बेहद कमी दर्ज की गई है। इसका असर मिट्टी की नमी पर पड़ा। दूसरी ओर, बारिश की तीव्रता बढ़ गई है, जिससे मिट्टी का क्षरण बढ़ रहा है

के रेत के टीलों की वजह से बर्बाद हो जाने के बाद अपना पेशा बदल लिया। आचार्य एनजी रंगा कृषि विश्वविद्यालय के मृदा वैज्ञानिक केसी नटराज कहते हैं, "मिट्टी की गुणवत्ता बिगड़ती जा रही है। हमें साल में जितनी वर्षा प्राप्त होती है, उससे कहीं अधिक नमी खो रहे हैं।" मिट्टी की खराब गुणवत्ता का एक कारण इस क्षेत्र में घटती बारिश है।

कीटनाशकों से बिगड़े हालात

किन्नौर जिले के चांगो गांव की 45 वर्षीय किसान संतोषी नेगी अपने 0.5 हेक्टेयर सेब के बाग को बचाने के लिए क्लोरपाइरीफोस की खोज में हैं, जो एक ऑर्गनोफॉस्फेट कीटनाशक है और कई देशों में प्रतिबंधित है। वह कहती हैं कि, "कीट से लगभग 40 पेड़ संक्रमित हो गए हैं।" वह बताती हैं कि हाल के छह से सात वर्षों में कीटों द्वारा हुए नुकसान में काफी बढ़ोतरी हुई है। आमतौर पर घुन मिट्टी में रहते हैं और जड़ों पर हमला करते हैं। इसके बाद जल्द ही पौधा खराब होने लगता है। पिछले एक दशक में कीटनाशकों और उर्वरकों पर उसका निवेश 4,000 से बढ़कर 25,000 रुपए प्रति वर्ष हो गया है।

पूह में रहने वाले 62 वर्षीय किसान देविंदर सिंह लोक्टस इस विकट समस्या की वजह बताते हैं, "सेब के पेड़ों की जड़ों को स्वस्थ रखने के लिए मिट्टी में अच्छी नमी की आवश्यकता होती है। लेकिन हाल के वर्षों में कम बर्फबारी के कारण इसमें भी कमी आई है। यहां तक कि पर्माफ्रॉस्ट, जो साल-दर-साल मिट्टी में नमी बनाए रखती थी, अब वह भी घट रही है।" उनके बाग में सेब के पेड़ स्टेम बोरर, वूली एफिड्स और रेड स्पाइडर माइट्स जैसे तमाम कीटों के शिकार हैं।

कीटनाशकों का बढ़ता उपयोग पहाड़ के पारिस्थितिक तंत्र को बिगाड़ रहा है। इसकी वजह से लेडीबर्ड बीटल और ग्रीन लेसविंग बग की जान भी जा रही है, जो कीटों के प्राकृतिक शिकारी हैं। किसानों को इसके बारे में जानकारी नहीं दी जाती है। यह तथ्य भी नहीं बताया जाता कि उनके जिले में भूमि का तेजी से क्षरण हो रहा है। जिले का 72 प्रतिशत से अधिक हिस्सा मरुस्थलीकरण और भू-क्षरण के दौर से गुजर रहा है। स्थानीय निवासियों का कहना है कि हाल के वर्षों में बढ़ते तापमान के साथ, अब ऊपरी किन्नौर भी सेब के लिए उपयुक्त हो गया है। लेकिन, बढ़ते तापमान के साथ इस क्षेत्र में एक और जलवायु परिवर्तन देखा गया है। हिमपात में बेहद कमी दर्ज की गई है। इसका असर मिट्टी की नमी पर पड़ा। दूसरी ओर, बारिश की तीव्रता बढ़ गई है, जिससे मिट्टी का क्षरण बढ़ रहा है।

बन्नी मैदानों से घास गायब

कच्छ के बगारिया गांव के कुबेर करमकांत जाट मालधारी घुमंतू समुदाय से ताल्लुक रखते हैं। उनके मवेशी 2,617 वर्ग किलोमीटर में फैले बन्नी घास के मैदानों पर सदियों से आश्रित रहे हैं। कभी एशिया के सबसे अच्छे और प्राकृतिक घास के मैदानों में शुमार यह मैदान अब बबूल (स्थानीय भाषा में गंदो बबूल और पागल बबूल) के जंगल में तब्दील होते जा रहे हैं। 1960-61 में योजना आयोग की सलाह पर सरकार ने 31,550 हेक्टेयर क्षेत्र में बबूल के बीजों का हेलिकॉप्टर से छिड़काव कराया था। मकसद था जमीन में खारापन रोकना।

भारतीय वन्यजीव संस्थान की रिपोर्ट के अनुसार, यह काम सामाजिक-आर्थिक और पर्यावरण पर प्रभाव के आकलन के बिना हुआ। बीज उस जगह भी डाले गए जहां की जमीन में खारापन नहीं था या कम खारापन था। धीरे-धीरे से बबूल कच्छ के घास के मैदानों में भी फैल गए। गुजरात इंस्टीट्यूट ऑफ डेजर्ट इकॉलोजी के निदेशक विजय कुमार बताते हैं, "2009 में 33 प्रतिशत क्षेत्र इसके दायरे में था जो 2015 में बढ़कर 54 प्रतिशत हो गया। जैसे-जैसे इसका दायर बढ़ रहा है, घास के मैदान सिकुड़ते जा रहे हैं।"

गुजरात उन पांच राज्यों में शामिल है जहां की 50 प्रतिशत से अधिक भूमि मरुस्थलीकरण अथवा क्षरण की शिकार है। राज्य के कच्छ, सुरेंद्रनगर, पंचमहल, साबरकांठा और भावनगर में वनस्पति और मिट्टी की ऊपरी परत का बड़े पैमाने पर क्षरण हुआ है। यह क्षरण प्राकृतिक अथवा मानवीय गतिविधियों का नतीजा है। राज्य में पर्यावरण संरक्षण पर काम करने वाले गैर सरकारी संगठन सहजीवन के कार्यकारी निदेशक पंकज जोशी बताते हैं, "प्राकृतिक क्षरण कई दशकों में और धीरे-धीरे होता है, जबकि मानवीय गतिविधियों से क्षरण

आदित्यन पीसी / सीएसई

कच्छ के बन्नी घास के मैदान बबूल के जंगल में तब्दील हो रहे हैं। 1960-61 में योजना आयोग की सलाह पर सरकार ने 31,550 हेक्टेयर क्षेत्र में बबूल के बीजों का छिड़काव कराया था

बेहद तेज गति से होता है और अब इसे रोकना किसी बड़ी चुनौती से कम नहीं है।

आईपीसीसी की रिपोर्ट

इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आईपीसीसी) द्वारा 7 अगस्त को जारी हुई रिपोर्ट में भी इस समस्या की गंभीरता से उठाया गया है। रिपोर्ट के अनुसार, पृथ्वी पर करीब 9.2 फीसदी शुष्क भूमि मरुस्थलीकरण की शिकार बन गई है। यह करीब 50 करोड़ लोगों के जीवन को प्रभावित करेगी। यह दुनिया के लिए एकदम सीधी चेतावनी है कि या तो भूमि प्रबंधन के प्रयासों को अपनाओ नहीं तो भूमि की खराबी के कारण पैदा होने वाले मरुस्थलीकरण और जलवायु परिवर्तन जैसे दुष्परिणामों को झेलने के लिए तैयार रहो। आईपीसीसी के मुताबिक, बर्फ से मुक्त दुनिया की एक-तिहाई भूमि बेहद दबाव में है। रिपोर्ट में कहा गया है कि उप-सहारा अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया, पूर्वी यूरोप और लैटिन अमेरिका में वर्ष 2000 से अब तक 5 करोड़ हेक्टेयर वन भूमि का अधिग्रहण किया गया है। इसमें ज्यादातर भूमि अधिग्रहण कृषि कार्यों के लिए है। प्राकृतिक घास के मैदानों को चारागाह में बदल दिया गया है। वनों को कृषि के मैदान, वेटलैंड को नालों में तब्दील कर दिया गया है। वहीं, इस बीच ग्रीन हाउस गैसें अपने चरम पर हैं। 2016-2017 में मानव गतिविधियों के कारण करीब 13 फीसदी कार्बन डाईऑक्साइड, 44 फीसदी मीथेन और 82 फीसदी नाइट्रस ऑक्साइड वातावरण में बढ़ी है। यह सब कुछ वनीकरण के नुकसान, लकड़ियों की कटाई, कृषि गतिविधियों के कारण हुआ है। ग्रीन हाउस गैसें वैश्विक तापमान के जरिए जमीन की गुणवत्ता को नुकसान पहुंचाने के साथ ही मरुस्थलीकरण को बढ़ा रही हैं। 1961 से अब तक इस दुनिया में 11 से 14 फीसदी जैव-विविधता नष्ट हो चुकी है।

आईपीसीसी की रिपोर्ट स्पष्ट तौर पर जलवायु परिवर्तन और मरुस्थलीकरण के बीच रिश्ता नहीं कायम करती है। हालांकि, मरुस्थलीकरण के बारे में रिपोर्ट में यह जरूर कहा गया है कि यह मानव गतिविधि और जलवायु विविधता व बदलाव दोनों का नतीजा है। रिपोर्ट के मुताबिक, शुष्क भूमि पर गर्मी दोगुनी तक बढ़ चली है। वहीं, न सिर्फ भूमि के प्रकार में बदलाव हो रहा है बल्कि शुष्क और तपती भूमि पर सूखे की प्रवृत्ति बार-बार देखने को मिल रही है। कई शुष्कभूमि पर आक्रमणकारी और विदेशी प्रजातियों के पौधों की वजह से भी मरुस्थलीकरण बढ़ रहा है। इसकी वजह से पिछली शताब्दी में पारिस्थितिकी को भी नुकसान पहुंचा है। इतना ही नहीं वनों में आग लगने की घटनाएं भी मरुस्थलीकरण के लिए प्रेरक का काम कर रही हैं। वनस्पतियों का दायरा घटने से न सिर्फ मृदा क्षरण होता है बल्कि, मृदा की उपज शक्ति भी घटती है। यह मृदा में रहने वाले सूक्ष्म संसार को भी नुकसान पहुंचाती है।

आईपीसीसी ने जलवायु परिवर्तन, भूमि की खराबी और मरुस्थलीकरण के बीच एक अचूक संबंध खोजा है। रिपोर्ट में प्रस्ताव है कि देसी समुदायों के जमीन अधिकारों की रक्षा की जाए ताकि जमीन के टिकाऊ इस्तेमाल को सुनिश्चित किया जा सके। जमीन का नामकरण और उनकी पहचान के कार्यक्रम चलाए जाएं। खासतौर से वनों के प्रबंधन और कॉर्बन संग्रहण का काम हो *(देखें, राजस्थान ने दिखाई राह, पेज 40)*। रिपोर्ट में इन कामों में स्थानीय लोगों की भागीदारी भी बढ़ाने का प्रस्ताव किया गया है। स्थानीय स्तर पर समस्याओं की शिनाख्त होती है तो भूमि को फिर से दुरुस्त बनाया जा सकता है।

विशेष टिप्पणी

राजस्थान ने दिखाई राह

प्रदेश में 2003-05 से लेकर 2011-13 के बीच वायु क्षरण प्रभावित क्षेत्र में 1,34,180 हेक्टेयर की कमी आई है

पीसी मोहराणा, ओपी यादव

नैरोबी में संयुक्त राष्ट्र के मंच (यूएनसीओडी) पर मरुस्थलीकरण के मुद्दे पर 1977 में पहली बार चर्चा की गई। संयुक्त राष्ट्र की ओर से मरुस्थलीकरण की समस्या से निपटने के लिए लगातार कार्यक्रम चलाए जाते रहे हैं। हाल ही में चीन में आयोजित सीओपी-13 में सभी 196 पक्षों में से 169 देशों ने मरुस्थलीकरण से प्रभावित होने की घोषणा की। इसमें कहा गया कि पृथ्वी शिखर सम्मेलन के 25 वर्षों के बावजूद मरुस्थलीकरण अब भी दुनिया भर के लिए एक बड़ी समस्या बना हुआ है। इसरो द्वारा 2016 में प्रकाशित एटलस के अनुसार, मरुस्थलीकरण के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार जल क्षरण है। 10.98 फीसदी क्षेत्र में मरुस्थलीकरण जल क्षरण की वजह से ही होता है। इसके बाद वनस्पति क्षरण का नंबर आता है, जिसके कारण 9.91 प्रतिशत क्षेत्र में मरुस्थलीकरण होता है, फिर वायु क्षरण (5.55 प्रतिशत क्षेत्र में), लवणता (1.12 प्रतिशत), मानव निर्मित / बसावट (0.69 प्रतिशत) और अन्य कारणों जैसे जलभराव, अत्यधिक पाला, लोगों का दखल, बंजर और चट्टानी भूमि (2.07 प्रतिशत) आदि वजहें भी इसके लिए जिम्मेदार हैं। देश के उत्तर पश्चिमी हिस्से में मरुस्थलीकरण की समस्या अधिक गंभीर है, जिसमें थार रेगिस्तान के भारतीय क्षेत्र के साथ ही देश का सबसे गर्म शुष्क जोन भी आता है। राजस्थान में देश के कुल शुष्क क्षेत्र (32 मिलियन हेक्टेयर) में से सबसे अधिक हिस्सा (20.8 मिलियन हेक्टेयर या 62 प्रतिशत) आता है। राज्य में मरुस्थलीकरण को बढ़ावा देने में वायु क्षरण की भूमिका भी काफी अहम है, जिससे 1,51,97,874 हेक्टेयर (44.41 प्रतिशत) क्षेत्र प्रभावित है। वायु क्षरण व निक्षेपण के चलते उड़ती रेत और धूल भरे तूफान थार के रेगिस्तानी पर्यावरण की विशेषता हैं। गर्मियों के दौरान इस तरह की घटनाओं की तीव्रता अधिक महसूस की जा सकती है। यह तीव्रता गर्मी की तेज हवाओं, रेतीले इलाके, अपर्याप्त और विरल वनस्पति आच्छादन और मानव गतिविधियों का परिणाम है।

सकारात्मक नतीजे

क्षेत्र के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 72 प्रतिशत यानी लगभग 1.57 लाख हेक्टेयर हिस्सा वायु क्षरण/ निक्षेपण से प्रभावित है, जिसमें से 5,800 वर्ग किमी क्षेत्र बहुत खतरनाक ढंग से निम्नीकृत

तारिक अजीज / सीएसई

(डिग्रेडेड) हो चुका है, 25,540 वर्ग किमी क्षेत्र गंभीर रूप से प्रभावित है, 73,740 वर्ग किमी क्षेत्र मामूली रूप से और 52,690 वर्ग किमी क्षेत्र कम प्रभावित है। वायु अथवा रेत नियंत्रण उपायों के तहत 2 स्थितियों को लेकर लक्ष्य तय किए गए हैं, जिनमें ढके हुए बालू के टीले और रेतीले मैदान शामिल हैं। दिलचस्प तथ्य यह है कि 2003-05 से लेकर 2011-13 के बीच वायु क्षरण प्रभावित क्षेत्र में 1,34,180 हेक्टेयर की कमी आई है। हालांकि, रेतीले टीलों के स्थिरीकरण के लिए पहले से कुछ यांत्रिक या रासायनिक तरीके चलन में हैं, लेकिन केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (सीएजेडआरआई) की तरफ से डिजाइन किए गए वनीकरण कार्यक्रम और वनस्पति अवरोध की तकनीक थार रेगिस्तान के लिए प्रभावी पाई गई है। संस्थान ने इसके लिए पुराने (10 हजार साल पहले बने), बड़े (12 से 40 मीटर ऊंचे) और स्वाभाविक रूप से स्थिर टिब्बों पर ध्यान केंद्रित किया। इन टीलों की सालाना गतिशीलता बहुत कम (3 से 5 मीटर) है। सीएजेडआरआई की इस तकनीक में ये गतिविधियां शामिल हैं :

(i) खिसकते रेतीले टीलों वाले क्षेत्रों को जैविक हस्तक्षेप से बचाने के लिए बाड़ लगाना, (ii) स्थानीय रूप से उपलब्ध झाड़ियों और घास आदि का इस्तेमाल करके, समानांतर पट्टियों या फिर शतरंज की बिसात वाले पैटर्न में सूक्ष्म वायुरोधकों का निर्माण करना (iii) टिब्बों की ढलान पर वनीकरण के लिए घास के बीजों की सीधी बुवाई और देसी व विदेशी प्रजातियों के पौधों की रोपाई करना, (iv) सूक्ष्म वायु अवरोधकों की ओर घास की पट्टियों को लगाना या घास के बीज व फलियों वाली लताओं का बीजारोपण करना, (v) 10 से 15 वर्षों में पूरी लागत निकलने तक रेत के इन टीलों का नियमित और उचित प्रबंधन करना।

1957-58 व 2014-15 के तुलनात्मक आंकड़े शुद्ध बोए गए क्षेत्र में 18.25 प्रतिशत, दोहरे फसल क्षेत्र में 14.75 प्रतिशत और वन क्षेत्र में 1.61 प्रतिशत की वृद्धि दर्शाते हैं

सूक्ष्म वायुरोधकों के लिए झाड़ियों के रूप में लेप्टेडेनिया पायरोटेक्निका (खींप), जिजिफस न्यूमुलेरिया (पाला), क्रोटालेरिया बुरहिया (साइनिया) और पैनिकम तुर्गिडम (मूरत), पेड़ के तौर पर अकेशिया टॉर्टिलिस, प्रोसोपिस एसपीपी, अकेशिया सेनेगल, पार्किंसोनिया आर्टिकुलेटा और तामरिस्क आर्टिकुलेटा और घास के तौर पर सेवण घास व बफेल घास की प्रजातियों को उपयुक्त माना गया है। वर्तमान में यह तकनीक जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर, जोधपुर और चुरू जैसे सभी रेगिस्तानी जिलों में फैल गई है। इन जगहों पर राजस्थान के राज्य वन विभाग की मदद से 4 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में रेत के टीले स्थिर किए जा चुके हैं।

वायुरोधी खेत पेड़, पौधों, अथवा झाड़ियों द्वारा बनाये गए वनस्पतिक अवरोध होते हैं और हवाओं के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने में सक्षम होते हैं। संस्थान ने इन तकनीकों का प्रयोग उन क्षेत्रों में किया जहां रेत के टीले नहीं थे। इजराइली बबूल (अकेशिया टॉर्टिलिस), नीलगिरि (यूकेलिप्टस कैमलडुलेंसिस), शीशम (डालबर्जिया सिसू) और रोहेड़ा (टेकोमेला अंडुलाटा) जैसे कई पेड़ों का लगभग 800 किमी लंबा बागान जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर, चूरू, झुंझुनूं, नागौर, अजमेर, और पाली जिले में लगाया गया। सीकर-लोहारू, सीकर-फतेहपुर, और पलसाना-देशनोक अनुभाग की रेल पटरियों के अगल-बगल लगभग 100 किमी के क्षेत्र में वृक्षारोपण किया गया, तो वहीं मोहनगढ़ के आईजीएनपी क्षेत्र में 250 किमी के भूभाग में पेड़ लगाए गए। जैसलमेर जैसे अत्यधिक शुष्क जिलों से मिले नतीजों के अनुसार, ऐसे बगीचों ने 2 से 10 घंटों की दूरी में वायुरोधकों की सीमा पर हवा के वेग को कम कर दिया। इस तरह के वृक्षारोपण से मिट्टी की हानि में भी लगभग 76 प्रतिशत की कमी आई है। बिना वायुरोधी बगीचों वाले क्षेत्रों की अपेक्षा वायुरोधकों की सीमा के अंदर मिट्टी कम से कम 14 प्रतिशत ज्यादा नमी थी और बाजरे की पैदावार में 70 प्रतिशत का इजाफा दर्ज किया गया। इतने अच्छे परिणामों के बावजूद, कृषि योग्य जमीनों में वायुरोधक किसानों के बीच उतने लोकप्रिय नहीं हैं, क्योंकि कई बार पेड़ खेतों में कृषि कार्यों व अन्य गतिविधियों में बाधक होते हैं। आजकल खेतों की मेढ़ों पर हवा की दिशा में पेड़ लगाने को काफी बढ़ावा दिया जा रहा है। चौखानेदार या समानांतर धारियों में लगाए गए जंगल, टिब्बों की ढलानों पर रेत की आवाजाही को रोक सकने में काफी हद तक समर्थ रहे हैं। बढ़ते हुए वनस्पतिक आच्छादन के साथ, इंदिरा गांधी नहर परियोजना (आईजीएनपी) कमांड क्षेत्र में ऐसी प्रणालियों ने सूक्ष्म जलवायु को प्रभावित किया है। वायु शक्ति में भारी गिरावट आई है और धूल भरी आंधी भी अब पिछले दिनों के 17 बार की तुलना में 5 से भी कम हो गई है। अकेले पश्चिमी राजस्थान में वायु अपरदन क्षेत्र वर्ष 2000 के दौरान 76 प्रतिशत की तुलना में 2013 में घटकर 73 प्रतिशत रह गया है। खेती पर इसके प्रभाव के मद्देनजर, वर्ष 2011 से 2013 के दौरान वर्षा-सिंचित कृषि भूमि पर वायु अपरदन 1,00,667 हेक्टेयर तक और किसानों द्वारा सिंचित कृषि भूमि पर 21,390 हेक्टेयर तक कम हो गया। इसी तरह, वायुरोधकों के साथ वाले खेतों में शीत लहर के कारण फसल उत्पादकता में औसत नुकसान महज 17 प्रतिशत पाया गया, जबकि वायुरोधकों के बिना खेतों में ये नुकसान 30 प्रतिशत तक हुआ। रोधकों के दोनों ओर वाष्पीकरण पटल मूल्य भी गिरावट के साथ 5-14 प्रतिशत तक आ गया था।

1957-58 और 2014-15 के तुलनात्मक आंकड़े पश्चिमी राजस्थान में कुछ बड़े बदलावों को दर्शाते हैं। ये बदलाव हैं, शुद्ध बोए गए क्षेत्र में 18.25 प्रतिशत, दोहरी फसल क्षेत्र में 14.75 प्रतिशत और वन क्षेत्र में 1.61 प्रतिशत की वृद्धि। खेती योग्य बंजर भूमि में 8.79 प्रतिशत, वर्तमान में परती जमीन में 1.64 प्रतिशत व पुरानी परती जमीन में 6.9 प्रतिशत की कमी आई है। ये आर्थिक लाभ के लिए फसल उगाने की इच्छा के सूचक हैं। किसानों की मानसिकता में इस प्रकार का आमूलचूल परिवर्तन संस्थागत समर्थन और अनुसंधानिक हस्तक्षेप की वजह से भी है। फसलों की उन्नत किस्मों का विकास, कई प्रकार की कृषि वानिकी की पहचान तथा उनका विकास, और कृषि-बागवानी, उद्यान वानिकी पशुपालन खेती प्रणालियों का विकास, किसानों को बेहतर आजीविका प्रदान कर उनकी काफी मदद कर रहा है।

(लेखक केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान से संबद्ध हैं)

विशेष टिप्पणी

मरुस्थलीकरण से मुक्ति का वैश्विक अर्थशास्त्र

टिकाऊ भूमि प्रबंधन प्रौद्योगिकियों में निवेश से कृषि भूमि का क्षरण रोक कर 2030 तक एशिया व अफ्रीका में गरीबी को खत्म करने में मदद मिलेगी

पुष्पम कुमार

तारिक अजीज / सीएसई

तेजी से बढ़ती वैश्विक जनसंख्या के कारण भोजन, कपड़े और जैव ईंधन की मांग भी लगातार बढ़ती जा रही है। ऐसे में भू-क्षरण और मरुस्थलीकरण दुनिया की सबसे बड़ी पर्यावरणीय चुनौतियों के तौर पर सामने आए हैं। एशियाई और अफ्रीकी देशों में तो इस समस्या ने और भी विकट रूप धारण कर लिया है। एसडीजी 15.3 में तय किए गए "भू-क्षरण तटस्थ विश्व" के लक्ष्य को 2030 तक हासिल कर पाना, न केवल अफ्रीकी और एशियाई देशों की प्रगति पर निर्भर करेगा, बल्कि इस लक्ष्य को प्राप्त कर पाने में इनकी सफलता पर भी महत्वपूर्ण ढंग से निर्भर होगा। 4.3 अरब हेक्टेयर भूक्षेत्र के साथ एशिया दुनिया का विशालतम और सबसे अधिक जनसंख्या वाला महाद्वीप है। दुनिया की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या एशिया में निवास करती है। इनमें से लगभग 70 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भूमि और उससे जुड़ी पारिस्थितिकी-तंत्र की व्यवस्थाओं पर निर्भर हैं। प्रभावित लोगों की संख्या के हिसाब से ये महाद्वीप भू-क्षरण , मरुस्थलीकरण और सूखे से सबसे बुरी तरह त्रस्त है। दुनिया के सबसे बड़े और सबसे ज्यादा आबादी वाले महाद्वीप, एशिया का कुल वैश्विक भूमि के लगभग 30 प्रतिशत हिस्से पर अधिकार है।

अब उन अफ्रीकी देशों की बात करते हैं, जहां स्थिति भयानक हो चुकी है और भू-क्षरण और मरुस्थलीकरण से निपटने के लिए तत्काल हस्तक्षेप की जरूरत है। अफ्रीका के एजेंडे 2063 [1] की पहली महत्वाकांक्षा, समावेशी प्रगति व सतत विकास (अफ्रीकी संघ आयोग, 2015) के आधार पर एक समृद्ध अफ्रीका का निर्माण करना है। अफ्रीकी देशों के लिए उन सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी)[2] को हासिल करना उनके एजेंडा 2063 की महत्वाकांक्षाओं के अनुरूप ही है, जिनके लिए दुनिया ने 2030 का लक्ष्य निर्धारित किया है।

अफ्रीका में हर साल लगभग 12 मिलियन हेक्टेयर जमीन (बुल्गेरिआ या बेनिन जितनी बड़ी भूमि) नष्ट हो जाती है और साथ ही नष्ट हो जाती है 20 मिलियन टन अनाज उपजाने की क्षमता। खाद्य असुरक्षा, गरीबी, सामाजिक तनाव, साफ पानी की कमी भू-क्षरण के सामाजिक-आर्थिक परिणाम हैं। वैश्विक भू-क्षरण की समीक्षा इस बात की पुष्टि करती है कि अफ्रीका विशेष रूप से भूमि क्षरण की चपेट में है और सबसे ज्यादा प्रभावित भी। यूएनसीसीडी के अनुसार, अफ्रीका में लगभग दो तिहाई उपजाऊ भूमि भू-क्षरण से प्रभावित है। अनुमान है कि कृषि योग्य भूमि का नुकसान ऐतिहासिक दर से 30 से 35 गुना ज्यादा हो रहा है।

एसडीजी को पाने और अफ्रीका को संपन्न व गरीबी-मुक्त बनाने और एजेंडा 2063 "दि अफ्रीका वी वांट" की अपेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए उसे अपने प्राकृतिक संसाधनों का दीर्घकालिक प्रबन्धन करना होगा। मिट्टी, खासकर कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में इस्तेमाल होने वाली मिट्टी की ऊपरी परत, दुनिया के किसी भी देश

में खाद्य, रेशे और जैव ईंधन के उत्पादन के लिए सबसे जरूरी प्राकृतिक संसाधन होते हैं। मिट्टी बहुत धीमे-धीमे तैयार होती है और कृषि भूमि की स्थिति में मिट्टी की ऊपरी 1 इंच की परत को तैयार होने में 200 से 1,000 साल तक लग जाते हैं। चारागाह और वनभूमि होने की स्थिति में तो यह समय और भी ज्यादा हो सकता है।

ईएलडी की पहल और यूएनईपी के द्वारा प्रस्तुत "इकोनॉमिक्स ऑफ लैंड डिग्रडेशन इन अफ्रीकाः बेनिफिट ऑफ एक्शन आउटवेट दी कॉस्ट्स" नामक रिपोर्ट इस तथ्य को उजागर करती है। 42 अफ्रीकी देशों में अन्न उपजाने योग्य 105 मिलियन हेक्टेयर कृषि भूमि में भू-क्षरण से होने वाली पोषक तत्वों की कमी के चलते प्रति वर्ष 280 मिलियन टन अनाज की फसलों की क्षति हो रही है। इन नुकसानों का अनुमानित आर्थिक मूल्य 127 बिलियन अमेरिकी डॉलर प्रति वर्ष के लगभग है। इसी अध्ययन के अन्य परिणाम दर्शाते हैं कि 42 अफ्रीकी देशों में भू-क्षरण के खिलाफ टिकाऊ भूमि प्रबंधन (एसएलएम) के तहत उठाए गए कदमों के फायदे 15 वर्षों (2015-2030) में उससे जुड़ी लागत से औसतन 7 गुना ज्यादा हैं।

अफ्रीका और एशिया में टिकाऊ भूमि प्रबंधन जरूरी

टिकाऊ भूमि प्रबंधन को अमल में लाने के लिए इन तथ्यों पर गौर करने की जरूरत है

- अध्ययन के अनुसार अगले 15 वर्षों में (2016-30) में भूमि क्षरण के चलते पोषक तत्वों की कमी के कारण अनाज की फसलों में होने वाले कुल नुकसान के रूप में, निष्क्रियता की लागत का वर्तमान मूल्य, इन 42 देशों की जीडीपी के करीब 12.3 प्रतिशत के बराबर है
- हालांकि, टिकाऊ भूमि प्रबंधन को अमल में लाने के लिए निवेश, महाद्वीप के 42 देशों की जीडीपी के 1.15 फीसदी के बराबर ही होगा
- उप-सहारा अफ्रीका में रह रहे हर तीन में से लगभग एक व्यक्ति कुपोषण का शिकार है और करीब 40 फीसदी अफ्रीकियों को नियमित तौर पर पर्याप्त भोजन भी नहीं मिल पा रहा है
- भू-क्षरण को नियंत्रित करने और लैंड डिग्रेडेशन न्यूट्रैलिटी (शून्य भू-क्षरण) के निर्धारित लक्ष्य को हासिल करने में टिकाऊ भूमि प्रबंधन अत्यधिक महत्वपूर्ण है
- अफ्रीकी देशों पर किए गए हर अध्ययन में ये बात सामने आई है कि भूक्षरण पर नियंत्रण करने के लिए की जाने वाली कार्रवाई से होने वाले फायदे उसमें लगने वाली लागत से कहीं अधिक है

एशिया के 44 देशों को इस अध्ययन से एक महाद्वीपीय स्तर का आनुभाविक विश्लेषण प्राप्त होता है। इसमें 127 प्रकार की फसलों की पैदावार वाली 487 मिलियन हेक्टेयर कृषि योग्य व स्थायी खेतिहर जमीन के 2002 से 2013 तक के आंकड़ों को शामिल किया गया है। यह अगले 13 वर्षों (2018–2030) में इस महाद्वीप के उन सभी 44 देशों और चीन के दोनों प्रांतों की कुल कृषि योग्य व स्थायी खेतिहर जमीन की 87 फीसदी होगी।

लागत लाभ विश्लेषण के परिणामों से पता चलता है कि अगर 13 वर्षों (2018-2030) में सभी एशियाई देश पूरी 487 मिलियन हेक्टेयर कृषि भूमि पर टिकाऊ भूमि प्रबंधन प्रौद्योगिकियों के विकास में निवेश करते हैं, तो 2,494 अमेरिकी डॉलर प्रति हेक्टेयर की दर से निवेश की कुल लागत का वर्तमान मूल्य 1,214 बिलियन अमेरिकी डॉलर होगा। स्थायी भूमि प्रबंधन में निवेश करने से कुल लाभ के प्रवाह का वर्तमान मूल्य 4,216 बिलियन अमरीकी डॉलर आंका गया है, जो 8,663 अमेरिकी डॉलर प्रति हेक्टेयर के बराबर है। इसका मतलब है कि एशिया लगभग 3,008 बिलियन अमेरिकी डॉलर का शुद्ध वर्तमान मूल्य बना सकता है।

इसके अलावा, अध्ययन से संकेत मिलता है कि टिकाऊ भूमि प्रबंधन प्रौद्योगिकियों में निवेश करने और कृषि भूमि क्षरण को रोकने से इन देशों को 2030 तक गरीबी को खत्म करने में मदद मिलेगी। पूरे एशिया में 2030 तक प्रति व्यक्ति घरेलू खाद्य फसल उत्पादन में 858 किलोग्राम तक वृद्धि होगी और इसके परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र में विस्तार के साथ ही आर्थिक विकास भी होगा।

मिट्टी की ऊपरी परत के क्षरण के चलते भूमि में पोषक तत्वों (एनपीके-नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम) की कमी की वजह से फसलों के कुल सालाना उत्पादन में करीब 16.7 मिलियन टन का नुकसान हो रहा है। क्षेत्र में पैदा होने वाली फसलों के भारित औसत मूल्य के मुताबिक, यह नुकसान लगभग 9.9 बिलियन अमेरिकी डॉलर के बराबर है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो मिट्टी की ऊपरी परत के क्षरण के चलते पोषक तत्वों (एनपीके- नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम) की कमी से अगर बचाव किया जा सके, तो एशिया 0.68 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से उत्पादकता बढ़ा सकता है। मिट्टी की ऊपरी परत के क्षरण के चलते पोषक तत्वों में कमी के कारण क्षेत्र में सालाना उत्पादन में करीब 1.31 बिलियन टन का नुकसान होता है जो कुल सालाना फसल के उत्पादन का लगभग 53 फीसदी है। भारित औसत फसल की कीमतों के मुताबिक, इस वार्षिक नुकसान का संगत मूल्य लगभग 732.7 अमेरिकी डॉलर है। इसका मतलब यह है कि एशिया की कृषि भूमि की ऊपरी परत के क्षरण के चलते होने वाली पोषक तत्वों (एनपीके- नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम) की कमी से बचाव के जरिए क्षेत्रीय स्तर पर 5.07 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष से लेकर 7.76 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष तक उत्पादन बढ़ाया जा सकेगा। इसलिए, एशियाई देशों, क्षेत्रीय और वैश्विक हितधारकों को मिट्टी की ऊपरी परत के क्षरण के चलते होने वाली पोषक तत्वों की कमी को रोकने के लिए कदम उठाने जरूरी हैं, जिसकी वजह से क्षेत्र में कृषि भूमि में भी कमी आ रही है। इसके लिए एशिया की खेतिहर जमीन पर टिकाऊ भूमि प्रबंधन प्रौद्योगिकियों में निवेश करना पड़ सकता है।

वैज्ञानिक आंकड़ों और आर्थिक विश्लेषण से संकेत मिलता है कि अगले दशक (2018-2030) में कृषि भूमि पर टिकाऊ भूमि प्रबंधन में निवेश से एसडीजी 15.3 को हासिल करने में मदद मिलेगी। इसके साथ ही यह निवेश इस अध्ययन में सम्मिलित अधिकतर एशियाई देशों को बहुत से सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में मददगार साबित होगा। इसमें आर्थिक विकास और रोजगार सृजन (एसडीजी 8.1 और 8.5), भीषण गरीबी को खत्म करने और गरीबी स्तर में कमी लाने (एसडीजी 1.1 और 1.2), कृषि उत्पादन व आय दोगुना करते हुए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने और सतत खाद्य सुरक्षा व्यवस्था (एसडीजी 2.3 और 2.4) तय करने जैसे लक्ष्य शामिल हैं।

(लेखक यूएन पर्यावरण में मुख्य पर्यावरणीय अर्थशास्त्री हैं)

कोलिस्टिन पर प्रतिबंध से आगे

पशुओं में कोलिस्टिन के इस्तेमाल पर रोक महत्वपूर्ण लेकिन इससे भी ज्यादा जरूरी है एंटीबायोटिक प्रतिरोधी क्षमता से मुकाबला

चंद्र भूषण

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय (एमओएचएफडब्ल्यू) ने 19 जुलाई, 2019 को एक अधिसूचना जारी की है जिसमें खाद्य उत्पादक पशुओं, मुर्गीपालन, एक्वा फार्मिंग (जल कृषि) और पशुचारा अनुपूरक आहार में कोलिस्टिन और इसके फॉर्म्युलेशन की बिक्री, विनिर्माण और वितरण पर रोक लगा दी गई है। इसके अलावा, इसमें कोलिस्टिन और इसकी फॉर्म्युलेशन विनिर्माताओं को यह निर्देश भी दिया गया है कि पैकेज और प्रचारक सामग्री पर स्पष्ट रूप से यह लिखना होगा कि यह खाद्य उत्पादक पशुओं, मुर्गीपालन, एक्वा फार्मिंग और पशुचारा अनुपूरक आहार में उपयोग के लिए नहीं है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अनुसार, कोलिस्टिन मनुष्यों के लिए "सर्वाधिक प्राथमिकता वाला अति महत्वपूर्ण" एंटीबायोटिक है। इसका अर्थ है कि कोलिस्टिन अनेक दवाओं के प्रतिरोधक बैक्टीरिया द्वारा होने वाले संक्रमण जैसे गंभीर संक्रमणों का आखिरी इलाज या आखिरी दवाइयों में से एक है। इसलिए कोलिस्टिन पर प्रतिबंध कुछ प्रमुख एंटीबायोटिक को मनुष्यों के लिए बचाए रखने की दिशा में सरकार द्वारा उठाया गया अहम कदम है। लेकिन क्या यह कदम काफी है?

तारिक अजीज/सीएसई

भारत में कोलिस्टिन जैसे एंटीबायोटिक का बड़े पैमाने पर दुरुपयोग हो रहा है। इसका इस्तेमाल खाद्य पशुओं के विकास के लिए और महामारी रोकने के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए, मुर्गीपालन उद्योग आर्थिक लाभ के लिए मुर्गियों को कम समय में और कम खाना देकर जल्दी मोटा करने के लिए एंटीबायोटिक का इस्तेमाल करता है। पक्षियों में बीमारी के लक्षण नजर न आने के बावजूद बीमारी की रोकथाम के नाम पर सभी पक्षियों को यह सामान्य आहार के साथ दिया जा रहा है। मुर्गियों की आपूर्ति करने वाली देश की कुछ सबसे बड़ी कंपनियों द्वारा इसका समर्थन किया जा रहा है। भारत में केएफसी, मैकडॉनल्ड, पिज्जा हट और डॉमिनोज जैसे प्रमुख फास्ट फूड ब्रांड्स को चिकन की आपूर्ति करने वाले वेंकीज द्वारा किसानों को कोलिस्टिन दिया गया था ताकि मुर्गियों को जल्द मोटा किया जा सके। अनेक वैज्ञानिक अध्ययन दर्शाते हैं कि इस दुरुपयोग से एंटीबायोटिक प्रतिरोध (एबीआर) बैक्टीरिया पनप रहे हैं और वातावरण में फैल रहे हैं। उदाहरण के लिए, नई दिल्ली स्थित गैर-लाभकारी संगठन सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट की प्रदूषण निगरानी प्रयोगशाला ने वर्ष 2017 में मुर्गीपालन केंद्रों और उसके आसपास के इलाके में प्रतिरोध की मात्रा का पता लगाने के लिए व्यापक अध्ययन किया था। इसमें मुर्गीपालन केंद्रों में ई-कोली जैसे बहु औषधी प्रतिरोधी बैक्टीरिया पाया गया। इस अध्ययन ने साबित किया कि खाद के रूप में निपटाए गए कचरे के जरिए बहु औषधी प्रतिरोधी ई-कोली इन केंद्रों से खेतों तक पहुंच रहा है जिससे मनुष्यों के इन बैक्टीरिया से संक्रमण का खतरा बढ़ गया है। अन्य देशों में किए गए अध्ययन इसकी पुष्टि करते हैं।

यद्यपि कोलिस्टिन को हटाना एबीआर से लड़ने की दिशा में उठाया गया पहला कदम है, तथापि यह लड़ाई काफी लंबी और कठिन है। काफी अधिक संभावना है कि उद्योग कोलिस्टिन की जगह किसी अन्य एंटीबायोटिक का इस्तेमाल शुरू कर देगा और इसका दुरुपयोग जारी रहेगा। एंटीबायोटिक के दुरुपयोग को खत्म करने के लिए हमें समग्र रूपरेखा की जरूरत है। सौभाग्य से हमारे पास ऐसी रूपरेखा इंडियन नेशनल प्लान ऑफ एंटी बायोटिक रेजिस्टेंस (एनएपी-एएमआर) के रूप में है। एनएपी-एएमआर का लक्ष्य पशुओं के लिए अति महत्वपूर्ण एंटीबायोटिक के इस्तेमाल को समाप्त करना है। इसका अंतिम लक्ष्य खेतीहर पशुओं में गैर-चिकित्सीय उपयोग के लिए इसके इस्तेमाल का सीमित और समाप्त करना है। लेकिन इसका कार्यान्वयन सुस्त है।

पशुपालन क्षेत्र में एनएपी-एएमआर के कार्यान्वयन के लिए जिम्दोर पशुपालन, डेयरी और मछलीपालन विभाग पशुओं के विकास के लिए एंटीबायोटिक पर रोक लगाने संबंधी कानून बनाने में नाकाम रहा है। इसी प्रकार, यह पशुओं में एंटीबायोटिक के इस्तेमाल का पता लगाने की प्रणाली बनाने में भी असफल रहा है। यह अन्य अहम एंटीबायोटिक के इस्तेमाल को चरणबद्ध रूप से समाप्त करने की कार्य योजना भी नहीं बना सका है। एनएपी-एएमआर के कार्यान्वयन की नोडल एजेंसी एमओएचएफडब्ल्यू भी काफी सुस्त है। इसके पास पैसा भी काफी कम है। वास्तव में एनएपी-एएमआर के कार्यान्वयन के लिए अलग से बजट भी नहीं है। लेकिन सच्चाई यह है कि हम एनएपी-एएमआर के कार्यान्वयन में देरी नहीं कर सकते। लोग एबीआर की वजह से मर रहे हैं। अगर हमने जल्द कुछ नहीं किया तो हम लाखों लोगों की जिंदगी खतरे में डाल देंगे।

कला दीर्घा

विकास या विनाश रितिका बोहरा

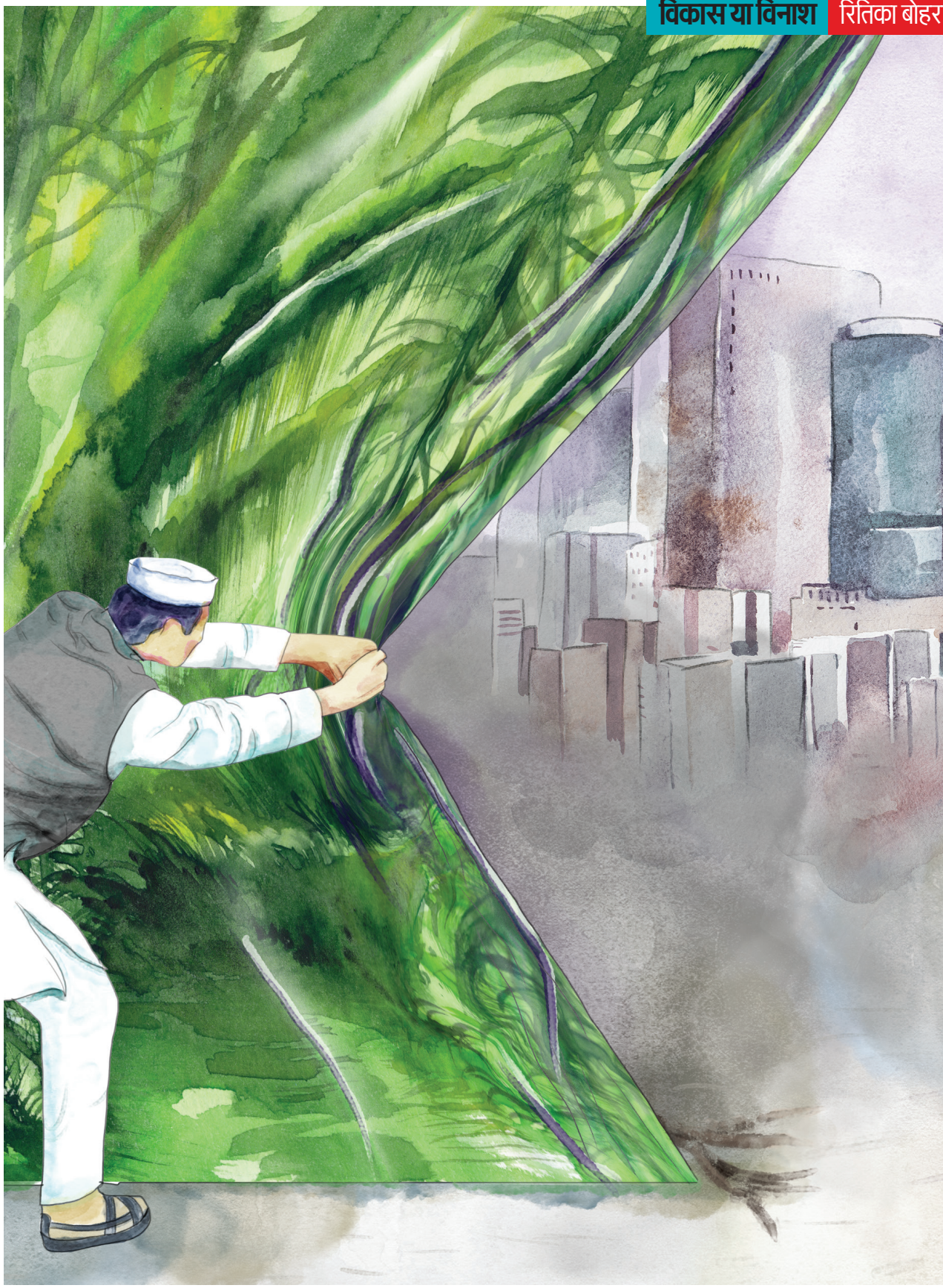

नोट: यदि आप इस पेंटिंग का प्रिंट चाहते हैं तो editor@downtoearth.org.in पर संपर्क करें। इससे प्राप्त सहयोग राशि स्वतंत्र पत्रकारिता पर खर्च होगी।

रॉयटर्स

जलमग्न असम

इस साल मॉनसून में अतिशय बारिश ने सबको स्तब्ध किया है। देश के बड़े हिस्से बाढ़ की त्रासदी झेली है। असम में तो बाढ़ ने लगभग पूरे राज्य को अपनी जद में ले लिया। राज्य के कुल 33 में से 32 जिलों के 5,817 गांव बाढ़ से प्रभावित हुए और 90 से अधिक लोग जान गंवा बैठे। पिछले कुछ वर्षों में राज्य में बाढ़ का प्रकोप लगातार बढ़ा रहा है। बारपेटा जिला बाढ़ की सर्वाधिक त्रासदी झेलने वाले जिलों में शामिल है। बाढ़ की समस्या को बारपेटा के जनप्रतिनिधि किस नजर से देखते हैं, यह जानने के लिए **भागीरथ** और **उमेश कुमार राय** ने उनसे बात की

अब्दुल खालिक, सांसद, बारपेटा

“बाढ़ के प्रकोप को कम करने के लिए असम की नदियों में जमी गाद को निकालकर गहरा करने की जरूरत है, ताकि नदियां अधिक पानी समेट सकें। इसके अलावा सरकार को अतिरिक्त जल संग्रहण की व्यवस्था भी करनी चाहिए”

असम में बाढ़ नई बात नहीं है, लेकिन इस बार इसका तेवर कुछ ज्यादा ही तल्ख था। दरअसल, बाढ़ के बाद की स्थिति ज्यादा खतरनाक होती है, क्योंकि नदियों का कटाव काफी बढ़ जाता है। इससे हजारों लोगों के बेघर होने का खतरा मंडराने लगता है। बारपेटा के लिए बाढ़ नहीं, बल्कि नदी का कटाव बड़ी समस्या है और इसलिए मैंने सरकार से अपील की है कि इसके लिए सही तरीके से योजना बनाई जाए ताकि नदियों के कटाव को नियंत्रित किया जाए। असम में बाढ़ दो वजहों से आती है। एक तो यहां अधिक बारिश हो जाती है और दूसरा भूटान से भी पानी छोड़ा जाता है। कुरिछु हाइड्रोपावर प्लांट से भूटान अगर बारिश के सीजन में पानी छोड़ता है, तो यहां बाढ़ विकराल रूप धारण कर लेती है क्योंकि मॉनसून के सीजन में यहां बारिश भी खूब हो जाती है। भूटान की तरफ से इस बार भी पानी छोड़ा गया था। पूर्व में जो भी सरकारें बनीं, उन्होंने बाढ़ की विभीषिका को कम करने के लिए कोई ठोस पहल नहीं की, इसलिए यह समस्या अब गंभीर बन चुकी है। हालांकि यह भी सच है कि बाढ़ को पूरी तरह रोका नहीं जा सकता। बस आप इससे बच सकते हैं। और ज्यादा से ज्यादा इससे होने वाले जानमाल के नुकसान को कम कर सकते हैं। बाढ़ के समय मैंने कई इलाकों का दौरा किया, लेकिन केवल एक जगह राष्ट्रीय आपदा मोचन बल (एनडीआरएफ) की टीम को बाढ़ के दौरान राहत कार्य करते देखा। बाढ़ के बाद पीड़ितों को राहत व उनके पुनर्वास को लेकर गंभीरता से काम नहीं होता। बाढ़ के प्रकोप को कम करने के लिए असम की नदियों में जमी गाद को निकालकर उन्हें गहरा करने की जरूरत है, ताकि नदियां अधिक से अधिक पानी को समेट सकें। इसके अलावा सरकार को अतिरिक्त जल संग्रहण की व्यवस्था भी करनी चाहिए ताकि पानी का समुचित इस्तेमाल हो सके।

जुलहास अली, सरपंच, रोमारी पाथेर गांव, असम

“कांग्रेस सरकार ने पहले ध्यान दिया होता, तो असम में बाढ़ पर काफी हद तक नियंत्रण हो गया होता। अब बीजेपी सरकार भी कांग्रेस के ही नक्शेकदम पर चल रही है। सरकारों ने कभी स्थायी समाधान के बारे में सोचा ही नहीं”

1991 में प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या हुई थी। जब हम लोगों ने इस बारे में सुना तो टेलीविजन पर समाचार देखने पैदल ही ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिणी किनारे स्थित लाइब्रेरी पहुंच गए क्योंकि उस वक्त वहीं टेलीविजन था। उस वक्त लाइब्रेरी और ब्रह्मपुत्र का किनारा हमारे घर से छह किलोमीटर दूर था, लेकिन अब यह एक किलोमीटर से भी कम दूर रह गया है। नदी का दायरा बढ़ा, तो समय-समय पर लाइब्रेरी को भी शिफ्ट करना पड़ा। अब यह लाइब्रेरी ब्रह्मपुत्र के बांध पर है। इस स्थिति की वजह बाढ़ है। इस बार भी असम में बाढ़ आई और मेरा गांव डूबा। पहले बाढ़ का पानी कम आता था, लेकिन अब हर साल बाढ़ के पानी में 4 फीट का इजाफा हो रहा है। ब्रह्मपुत्र नदी में इस बार पानी सामान्य से 15 फीट अधिक रहा। बाढ़ का पानी अब ज्यादा दिनों तक गांव में ठहर रहा है। इस साल की बाढ़ अन्य बाढ़ों की तुलना में इस मायने में अलग रही कि बहुत जल्दी गांव में पानी घुस आया। इस बार बारिश भी ज्यादा हुई और भूटान ने पानी भी अधिक छोड़ा जिससे यहां बाढ़ का प्रभाव ज्यादा रहा। पहले राज्य में कांग्रेस की सरकार थी, जो कहती थी कि केंद्र सरकार ही बाढ़ पर नियंत्रण के लिए कोई कदम उठा सकती है। उधर केंद्र सरकार ने भी कोई कदम नहीं उठाया। अगर कांग्रेस की सरकार ने पहले ही ध्यान दिया होता, तो असम में बाढ़ पर काफी हद तक नियंत्रण हो गया होता। अब बीजेपी सरकार भी कांग्रेस के ही नक्शेकदम पर चल रही है। सरकारों ने कभी स्थायी समाधान के बारे में सोचा ही नहीं। अगर ब्रह्मपुत्र के दोनों तरफ बांधों को मजबूत कर दिया जाए, तो राहत मिलेगी। सरकार को चाहिए कि बोल्डर आदि डालकर बांध को मजबूत कर दे और बांध पर रेलवे लाइन या रोड बना दे। इससे बांध भी स्थायी व मजबूत बनेगा और साथ ही ये क्षेत्र रेल या सड़क मार्ग से जुड़ जाएगा।

“नीति राजनीति” में हम किसी स्थानीय समस्या को लेकर संबंधित क्षेत्र के ग्राम प्रतिनिधि/पार्षद और लोकसभा/राज्यसभा सदस्य से बातचीत करेंगे। यह किसी समस्या को स्थानीय प्रतिनिधियों के नजरिए से देखने का प्रयास है।

डर

"अचानक उन्हें एहसास हुआ कि जो हवा वह अपने फेफड़ों के अंदर ले रहे हैं, वह तो कभी न कभी किसी विधर्मी ने भी अपने फेफड़ों में ली होगी"

सोरित गुप्तो

सोरित / सीएसई

दरवाजे को बंद कर अब वह सुकून महसूस कर रहे थे। अभी-अभी उन्होंने ऑनलाइन ऑर्डर किए खाने को वापस भेज दिया था क्योंकि डिलीवरी बॉय विधर्मी था। बस एक मलाल था कि आज तक उन्होंने ऐसी सावधानी क्यों नहीं बरती? पता नहीं कहां-कहां उन्हें ऐसे लोगों के हाथों से खाना खाना पड़ा होगा। फिर उनके मन में एक विचार आया और उन्होंने झटके से परदे का एक किनारा उठाया और उस पर लगी स्लिप को देखने लगे। उस स्लिप पर उत्पादक का नाम, पता और दाम लिखा था। पर धर्म? वह तो कहीं पर नहीं था!

मन ही मन गुस्सा कर उन्होंने सोचा, "इस परदे को न जाने किसने बुना होगा? क्या धर्म होगा उसका जिसने इसे सिला? जाने किसने इसके कपास को पैदा किया होगा?"

उन्होंने एक झटके में घर के सारे परदे उतारकर घर के बाहर रख दिए। इससे भी उनका मन नहीं भरा। उन्होंने गौर से अपने घर को देखा। उन्हें लगा कि वह कितने लापरवाह थे इतने दिन! वह अपने दुश्मनों, विधर्मियों से घिरे जिंदगी काट रहे थे। उन्होंने कभी जाने की कोशिश ही नहीं की कि उनका चादर, गद्दे, तकियों का धर्म क्या है? पलंग-अलमारी, कपड़े-लत्ते, बर्तनों की न उन्होंने कभी जात पूछी और न ही यह पता किया कि उनका गिलास, चाय की प्याली का धर्म क्या है?

अब तक वह दुकान से लाए सामान का बस तोलमोल करते पैसा चुकाते रहे। उन्होंने दराज से कुछ पुराने बिल खोज निकाले और ध्यान से पढ़ने लगे। उन्होंने सभी बिलों की पड़ताल की। बिलों में दुकान का नाम-पता और दाम वगैरह लिखा था पर कहीं पर भी खरीदे गए सामान के धर्म पर कुछ नहीं लिखा था।

"कितने लापरवाह हैं हम" उन्होंने मन ही मन सोचा और घर का सामान एक-एक कर घर से बाहर रखने लगे। पहले पंखे और बल्ब गए, फिर बारी थी फ्रिज, टीवी, स्मार्ट फोन, कूलर, एसी की। उसके बाद उन्होंने बर्तनों, साबुन, तेल, शैंपू को घर से बाहर निकाल फेंका। उन्होंने घर के राशन को भी फेंक दिया। घर से सारे रुपए पैसे भी फेंक दिए कि जाने कितने विधर्मियों के हाथों ने इन्हें छूआ होगा! घर अब खाली हो चुका था। बाल्टी, बोतल, घड़े से सारा पानी फेंक दिया। अब उनकी निगाह खुद पर पड़ी और उन्होंने अपने सारे कपड़े उतार कर फेंक दिए कि उन्हें यह नहीं पता था कि यह कपड़े किसने सिले? इतना कुछ करने के बाद भी एक अनजाना डर जाने का नाम ही नहीं ले रहा था। अचानक उन्हें लगा कि उनका मकान जिन ईंटों से बना है, उसके कारीगर के बारे में उन्हें कुछ नहीं पता और न ही उन्हें यह पता है कि इसको बनाने वाले मिस्त्री किस धर्म के थे। उन्होंने एक हथौड़ा उठाया और दीवारों को तोड़ने लगे। थोड़ी ही देर में वह अब हांफने लगे थे। दीवारों पर पड़ने वाले हथोड़े की हर चोट दीवारों को नहीं, मानो उनके दिल में बरसों से घर जमाए हुए डर की एक-एक ईंट को तोड़ रही थी। पर हाय! उनकी यह खुशी क्षणिक साबित हुई।

जल्द ही एक नए डर ने उन्हें बुरी तरह जकड़ लिया। अचानक उन्हें एहसास हुआ कि जो हवा वह अपने फेफड़ों के अंदर ले रहे हैं, वह तो कभी न कभी किसी विधर्मी ने भी अपने फेफड़ों में ली होगी। एक विधर्मी के फेफड़ों की हवा वह भला अपने फेफड़ों के अंदर कैसे ले सकते हैं?

उन्होंने एकाएक सांस लेना बंद कर दिया। पर मरकर भी उनकी आत्मा को शांति नहीं मिली। उनकी आत्मा ने देखा कि उनकी अस्थियों को एक पीतल के घड़े में रखा गया है।

उन्हें यह पता था कि अच्छे पीतल के घड़े तो मुरादाबाद में बनते हैं!

कभी जल संसाधनों से समृद्ध थी दिल्ली

आज भले ही दिल्ली पानी के लिए तरस रही हो लेकिन मध्य काल में यहां जलस्रोतों की विस्तृत व्यवस्था थी, जिससे नगरवासियों को पानी की जरूरतों के लिए कहीं जाना न पड़े

अरविन्द यादव / सीएसई

अर्द्ध चंद्राकार आकृति और सूर्य मंदिर से लगे तालाब सूरजकुंड में पत्थरों की सीढ़ियां और बांध थे। यह तालाब अरावली की पहाड़ियों में हुई बरसात का पानी जमा करता था

पानी के पंपों, बिजली और पानी साफ करने वाले रसायन क्लोरिन के भी बनने के काफी पहले से दिल्ली एक शहर रहा है। 11वीं सदी के बाद से तो यहां एक न एक शासक वंशों की राजधानी रहने के साथ ही यह बहुत समृद्ध और आबाद शहर रहा। अन्य बड़े शहरों के विपरीत इसकी स्थिति भी बार-बार बदलती रही है। आज शहर यमुना के किनारे बसा है पर पहले ऐसा नहीं था।

तोमर वंश के अनंगपाल ने सन 1020 में जिस जगह दिल्ली बसाई थी, यह आज के सूरजकुंड के पास है और यह अब हरियाणा की सीमा में आता है। इस शहर का नाम सूर्य मंदिर और उससे लगे पत्थर की सीढ़ियों वाले अर्द्ध चंद्राकार तालाब के चलते सूरजकुंड पड़ा। यह तालाब अरावली पर्वत पर पड़ने वाली बारिश के पानी को सहेजने के लिए बना था। फिरोजशाह तुगलक ने इसकी सीढ़ियों और गलियारे की मरम्मत कराई और पत्थर जड़वा दिए। सूरजकुंड के पास ही अनंगपुर बांध है, जिसमें स्थानीय पत्थरों का उपयोग हुआ है। तंग दर्रे में पत्थर भरकर बांध बनाया गया था। इसके बाद कई दिल्लियां बसी हैं और सबकी सब अरावली पहाड़ी श्रृंखला की तराई में ही बसीं। इन सभी नगरों में जल संचय की विस्तृत व्यवस्था थी, जिससे नगरवासियों को अपनी रोजाना की जरूरतें पूरी करने के लिए कहीं जाना न पड़े।

बूंदों की संस्कृति

किला रायपिथौरा : दक्षिणी दिल्ली में सल्तनत वाले दौर के जल प्रबंधों के अवशेष भरे पड़े हैं। किला रायपिथौरा (महरौली सन 1052) सल्तनत काल की पहली राजधानी थी और यह यमुना से 18 किमी. दूरी पर थी। इस पहाड़ी इलाके के भूगोल और इसकी ऊंचाई के चलते यहां यमुना से नहर के माध्यम से पानी लाने की कोई गुंजाइश नहीं थी। सिर्फ बरसात का पानी सहेज लेने का विकल्प ही था। इसीलिए सुल्तान अल्तुतमिश ने हौज-ए-सुल्तानी या हौज-ए-अल्तुतमिश नामक विशाल सरोवर बनवाया। बाद में अलाउद्दीन खिल्जी और फिरोजशाह तुगलक ने इस तालाब की मरम्मत करवाई। फिरोजशाह तुगलक ने शासनकाल में शरारती लोगों ने तालाब को पानी पहुंचाने वाले जल मार्गों को बंद कर दिया था। सुल्तान ने नलियों को साफ करने और हौज को पानी से भरने का आदेश दिया। 200 मीटर लंबे और 125 मीटर चौड़े इस तालाब का पानी आज भी काकी साहब की दरगाह पर जाने वाले लोग इस्तेमाल करते हैं। इस तालाब में अब काफी गाद मिट्टी भर गई है और इसके जल ग्रहण क्षेत्र पर भवन निर्माताओं और दिल्ली विकास प्राधिकरण ने कब्जा जमा लिया है।

तालाबों के साथ ही सुल्तानों और इनके अमीर-उनबों ने बावलियां (सीढ़ीदार कुएं) बनवाईं और उनकी देखरेख की। ये बावलियां निजी जागीर नहीं थीं और इसके सभी धर्मों और जातियों के लोग पानी ले सकते थे। गंधक की बावली सुल्तान अल्तुतमिश के समय बनी थी और पानी में गंधक की मात्रा होने के चलते इसका यह नाम पड़ गया। पत्थरों से बनी इस खूबसूरत बावली का पानी आज भी नहाने-धोने के काम आता है। इसके पास ही राजों की बावली, दरगाह काकी साहब की बावली, महावीर स्थल के पीछे स्थित गुफानुमा बावली जैसी अनेक बावलियों के भग्नावशेष मौजूद हैं। इस काल में शहर के अन्य हिस्सों में भी बावलियां बनीं। इसमें निजामुद्दीन बावली, फिरोजशाह कोटला स्थित बावली और वसंत विहार स्थित मुरादाबाद की पहाड़ की बावली प्रमुख है। ये सभी आज तक उपयोग में आ रही हैं। लेकिन उग्रसेन की बावली, पालम बावली और सुल्तानपुर बावली वगैरह सूख चुकी हैं और इसके सिर्फ ढांचे खड़े हैं।

सिरी : 1296 में बसी दूसरी दिल्ली, सिरी में (सन 1303) अलाउद्दीन खिल्जी ने एक विशाल जलाशय का निर्माण कराया। इस जलाशय का निर्माण भी अरावली पहाड़ियों पर गिरने वाले बरसाती पानी को सहेजने के लिए ही किया गया था। इसका जल ग्रहण क्षेत्र 24.29 हेक्टेयर का था। इसकी लंबाई 600 मीटर और चौड़ाई भी 600 मीटर थी। इसका नाम अलाउद्दीन खिल्जी के नाम पर हौज-ए-अलाई- रखा गया, जो बाद में बदलकर हौजखास बन गया। जलाशय के बांध अभी भी दिखते हैं। इसके उत्तरी और पश्चिमी बांध पर फिरोजशाह तुगलक ने मदरसा बनवा दिया।

तुगलकाबाद : महरौली और सिरी की आबादी बढ़ने से गियासुद्दीन तुगलक बसाना पड़ा। यह जगह यमुना के पास थी, पर सुल्तान ने बस्ती के लिए पहाड़ी जमीन को चुना क्योंकि इससे किलेबंदी में काफी आसानी हो गई। तुगलकाबाद किले में सात तालाबों और तीन विशालकाय बावलियों के भग्यावशेष हैं। कुओं की गिनती आसान नहीं है। पहाड़ी से पूरब की तरफ बह जाने वाले पानी की जरूरतें पूरी की गईं। महरौली के निकट स्थित हौज-ए-शम्शी के अतिरिक्त पानी को नौलावी नाले के माध्यम से तुगलकाबाद तक ले जाया जाता था। इस प्राकृतिक जल के ढलाव वाली प्रणाली के एक हिस्से को हाल में बड़ा और पक्का करके गंदे नाले का रूप दे दिया गया जो अब शहर की नालियों का गंदा पानी आगरा नहर में पहुंचता है।

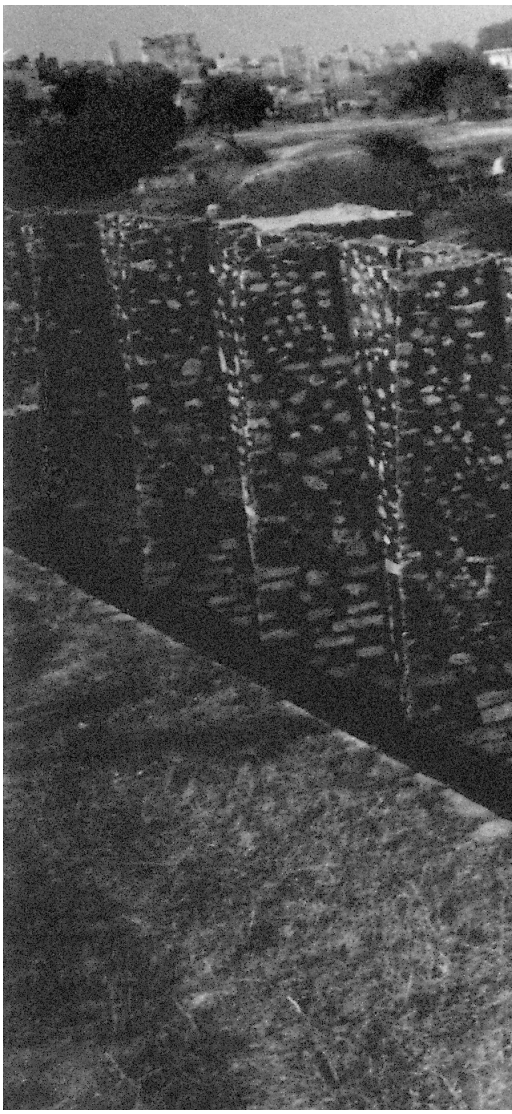

शाहजहां पहली बार दिल्ली को अरावली से उतारकर यमुना किनारे ले आए। उन्होंने किले, फौज और आम लोगों की जरूरतों के लिए पर्याप्त पानी उपलब्ध कराया

जहांपनाह : मुहम्मद बिन तुगलक को तीन और एक-दूसरे से होड़ लेती दिल्लियां विरासत में मिलीं और उसने एक चौथी दिल्ली-जहांपनाह भी इससे जोड़ दी। दुनिया का पनाहगार नाम दिया उसने अपनी दिल्ली को। सतपुला (सात पुलों वाला) का निर्माण नगर की सीमाओं के बाहर की जमीन की सिंचाई को व्यवस्थित करने के लिए किया गया। आधुनिक साकेत के पास स्थित सतपुला का निर्माण जहांपनाह की दक्षिणी दीवार के साथ किया गया था। यहां 64.96 मीटर ऊंचा बांध है। इसके सातों पुलों पर फाटक लगे थे, जिससे एक कृत्रिम झील में पानी भेजा जाता था। बांध के दोनों ओर निगरानी मीनार बने हैं, जिन पर बांध की देखरेख करने वाले कर्मचारी रहा करते थे। यह दोमंजिला ढांचा तब मौजूद जल संसाधन तकनीक का नायाब उदाहरण है। दोनों मंजिलों का काम अलग-अलग था। ऊपरी मंजिल के फाटक तभी खुलते थे जब पानी खतरे के निशान से ऊपर पहुंच जाए। निचली मंजिल पानी के भंडारण की व्यवस्था के लिए थी। सतपुला के निर्माण में वैज्ञानिक सिद्धांतों को लागू किया गया था। अंत्याधारों पर ही पूरा मेहराब और किनारे का यह पूरा ढांचा खड़ा था, जो मिट्टी की कटाव और इस पूरी व्यवस्था के संतुलन के लिए खड़ा किया गया था।

शाहजहानाबाद : मुगल बादशाह शाहजहां पहली बार दिल्ली को अरावली पहाड़ियों से उतारकर यमुना के किनारे ले आए। लेकिन उन्होंने अपने किले, अपनी

अरविन्द यादव / सी एस ई

दिल्ली शहर के बाहर की जमीन को सिंचित करने वाले पानी की आपूर्ति को व्यवस्थित करने के लिए सतपुला का निर्माण किया गया था। जहांपनाह की दक्षिण दीवार से लगा सतपुला 64.96 मीटर ऊंचा है और सातों मुंहों पर लगे फाटकों से एक कृत्रिम झील का पानी नियंत्रित होता था

फौज और आम लोगों की जरूरतों के लिए पर्याप्त पानी उपलब्ध कराने की जरूरतों का इंतजाम भी किया। शाहजहानी नहरों और दीघियों वाली उनकी व्यवस्था उस दौर की शायद सर्वश्रेष्ठ जल प्रबंध व्यवस्थाएं थीं। शाहजहां ने लाल किले का निर्माण (1639-48) कराया और जब शाहजहानाबाद शहर बन ही रहा था, तब उन्होंने अली मर्दन खां और उसके फारसी कारीगरों से कहा कि यमुना के पानी को शहर की ओर किले के अंदर पहुंचाने का इंतजाम करें। इससे पहले फिरोजशाह तुगलक जैसे शासकों ने खिज्राबाद से सफीदों (करनाल से हिसार) तक नहर बनवा दी थी। अकबर के शासनकाल में दिल्ली के सूबेदार ने इसकी मरम्मत करवाई थी। लेकिन नहर में जल्दी ही मिट्टी भर गई और इससे पानी का प्रवाह रुक गया। अली मर्दन खां ने न सिर्फ यमुना को महल के अंदर तक पहुंचाया, बल्कि इसे सिरमौर पहाड़ियों से निकलने वाली नहर से जोड़ दिया। यह नहर अभी दिल्ली की सीमा पर स्थित नजफगढ़ के पास है। नई नहर, जिसे अली मर्दन नहर कहा जाता था, साहिबी नदी का पानी लाकर पुरानी नहर में गिराती थी।

दिल्ली शहर में प्रवेश करने के पहले अली मर्दन नहर 20 किमी. इलाके के बगीचों और अमराइयों को सींचते आती थी। इस नहर पर चद्दरवाला पुल, पुलबंगश और भोलू शाह पुल जैसे अनेक छोटे-छोटे पुल बने हुए थे। नहर भोलू शाह पुल के पास शहर में प्रवेश करती थी और तीन हिस्सों में बंट जाती थी। एक शाखा ओखला तक जाती थी और मौजूदा कुतुब रोड और निजामुद्दीन इलाके को पानी देते हुए आगे बढ़ती थी। इसे सितारे वाली नहर कहा जाता था। दूसरी शाखा चांदनी चौक तक आती थी और मौजूदा नावल्टी सिनेमा घर तक पहुंचकर दो हिस्सों में बंट जाती थी। एक धारा फतेहपुरी होकर मुख्य चांदनी चौक तक पहुंचती थी। लाल किले के पास पहुंचकर यह दाहिने मुड़कर फैज बाजार होते हुए दिल्ली गेट के आगे जाकर यमुना नदी में गिरती थी। एक उपशाखा पुरानी दिल्ली गेट के आगे जाकर यमुना नदी में गिरती थी। एक उपशाखा पुरानी दिल्ली स्टेशन रोड वाली सीध में चलकर लाल किले के अंदर प्रवेश करती थी। नहर का पानी किले के अदर बने कई हौजों को भरता था और किले को ठंडा रखता था इस नहर को चांदनी चौक में नहरे-फैज और महल के अंदर नहरे-बहिश्त कहा जाता था। फैज का मतलब है

प्रदीप साहा / सीएसई

मेहरौली के पास स्थित हौज-ए-शम्सी जलाशय का अतिरिक्त पानी नौलाखी नाला में मोड़ दिया जाता था और यह नहर तुगलकाबाद जाती थी। अब इस प्राकृतिक जल निकासी मार्ग के एक हिस्से को बड़ा और पक्का बना दिया गया है। अब यह शहर के गंदे पानी को आगरा नहर तक पहुंचाने का मुख्य नाला बना दिया गया है

भरपूर और बहिश्त का मतलब है स्वर्ग। मुख्य नहर की तीसरी शाखा हजारी बाग और कुदसिया बाग की सिंचाई करते हुए मौजूदा अंतर-राज्य बस टर्मिनल के आगे यमुना में गिरती थी।

मुख्य शहर में यह नहर दीघियों और कुओं में पानी ला देती थी। दीघी अक्सर चौकोर या कभी-कभी गोलाकार होती थी, जिसमें अंदर जाने के लिए सीढ़ियों बनी होती थीं। अक्सर इसका आकार 0.38 मीटर लंबा और उतना ही चौड़ा होता था। हर दीघी के अपने फाटक होते थे। दीघी की सीढ़ियों पर कपड़े धोने या नहाने की मनाही थी पर उनमें से कोई भी आदमी पानी ले सकता था। लोग दीघियों से पानी लाने के लिए कहार या भिश्ती रखा करते थे। अधिकांश घरों या उनके अहातों में कुआं या छोटी दीघी हुआ करती थी। जब नहर का पानी शहर तक नहीं पहुंच पाता था तब दीघियां सूख जाती थीं और सारा जीवन कुओं के भरोसे चलता था। शहर के कुछ नामी कुएं थेः इंदारा कुआं (जो वर्तमान जुबली सिनेमाघर के पास था), गली पहाड़वाली के पास स्थित पहाड़ वाला कुआं, छिप्पीवाड़ा के निकट स्थित चाह रहट (जिससे पानी जामा मस्जिद में जाता था)।

1843 में शाहजहानाबाद में 607 कुएं थे जिनमें 52 में मीठा पानी आता था। अस्सी फीसदी कुएं बंद कर दिए गए हैं, क्योंकि इनमें नगर की गंदी नालियों का पानी भी घुसने लगा था। इस बात का कोई लिखित प्रमाण नहीं है कि चांदनी चौक होकर पानी ले जाने वाली नहर कब बंद हुई। 1740 से 1820 के बीच यह कई बार सूखी थी, पर शासकों ने बार-बार इसे ठीक कराकर चालू कराया। अंग्रेजों ने जब दिल्ली पर कब्जा किया तब भी इस नहर की मरम्मत की गई थी और 1820 में भी इसका पानी शहर में जाता था। 1890 में चारदीवारी वाले शहर के अंदर इसका पानी आना बंद हुआ। आज भी इस नहर के अवशेष वर्तमान लॉरेंस रोड और अशोक विहार इलाके में दिखते हैं।

दिल्ली देहात : दिल्ली के देहाती इलाकों में बांधों और कुओं से सिंचाई होती थी। शुरुआती गजेटियरों के अनुसार, दिल्ली के खेतों में सिंचित इलाके का अनुपात (57 फीसदी) काफी ज्यादा था। 19 फीसदी इलाके कुओं से पानी लेते थे, 18 फीसदी की सिंचाई नहरों से होती थी और 20 फीसदी बांधों और फाटकों से सिंचित होता था। पहाड़ियों से नीचे वाले पूरे इलाके में मुख्यतः बांधों से ही सिंचाई की जाती थी।

दिल्ली के बड़े बांध शादीपुर और महलपुर में थे जिनसे 121.5 हेक्टेयर, बडखल से 121.5 हेक्टेयर, पकल से 162 हेक्टेयर, धौज से 162 हेक्टेयर और कोट सिरोही से 40.5 हेक्टेयर की सिंचाई होती थी। नजफगढ़ इलाके में बाढ़ के पानी का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता था। जिन नहरों को बरसाती पानी से मतलब नहीं था उनका उपयोग ज्वार, बाजरा और कपास जैसी खरीफ फसलों को सींचने के लिए किया जाता था। जो इलाके बाढ़ के पानी में डूबे होते थे, बाद में उन पर रबी की फसल लगाई जाती थी।

कुओं की भूमिका भी बहुत महत्वपूर्ण थी। किसानों को अच्छे मजबूत कुओं से ज्यादा खुशी किसी और चीज से नहीं होती थी। उनके लिए अच्छा कुआं वही था जिससे घंटो पानी निकालने के बाद भी पानी का स्तर एक मीटर से ज्यादा नीचे न चला जाए। पानी की बाल्टी के आधार पर भी कुओं में फर्क किया जाता था। पानी मीठा, मलमला या खारा निकलता था। खारे पानी से सिंचाई नहीं की जाती थी, पर मलमला पानी सबसे अच्छी उपज दिलाता था। अच्छी जमीन में पहली सिंचाई (जिसे कोड़ या कोड़वा कहा जाता था) मलमले पानी से और फिर मीठे पानी की सिंचाई सबसे ज्यादा फायदेमंद होती थी। एक-दूसरे से कुछ-कुछ दूरी पर स्थित कुओं से यह पानी लिया जाता था।

तोमर वंश के अनगपाल की दिल्ली हरियाणा के वर्तमान सूरजकुंड के पास थी। अर्द्ध चंद्राकार आकृति और सूर्य मंदिर से लगे तालाब सूरजकुंड में पत्थरों की सीढ़ियां और बांध थे। यह तालाब अरावली पहाड़ियों में हुई बरसात का पानी जमा करता था।

मेहरौली के पास स्थित हौज-ए शम्सी जलाशय (जिसे अब शम्सी झील कहते हैं) का अतिरिक्त पानी नौलाखी नाला में मोड़ दिया जाता था और यह नहर तुगलकाबाद जाती थी। अब इस प्राकृतिक जल निकासी मार्ग के एक हिस्से को बड़ा और पक्का बना दिया गया है। अब यह शहर के गंदे पानी को अगरा नहर तक पहुंचाने का मुख्य नाला बना दिया गया है।

बादशाह शाहजहां की मांग पूरी करने के लिए उनके वास्तुकार अली मर्दन खां ने महल को ठंडा रखने के लिए 'नहरे बहिश्त' बनाई और इसे सिरमौर पहाड़ियों से आती नहर से जोड़ दिया। यह नहर नजफगढ़ के पास से आती थी। दिल्ली शहर के बाहर की जमीन को सिंचित करने वाले पानी की आपूर्ति को व्यवस्थित करने के लिए सतपुला का निर्माण किया गया था। जहांपनाह की दक्षिण दीवार से लगा सतपुला 64.96 मीटर ऊंचा है और सातों मुंहों पर लगे फाटकों से एक कृत्रिम झील का पानी नियंत्रित होता था।

("बूंदों की संस्कृति" पुस्तक से साभार)

ENVIRONMENTAL MANAGEMENT IN INDUSTRIES

TRAINING PROGRAMME

November 12-15, 2019

Environmental issues like climate change, water availability, pollution, waste generation and disposal are commanding considerable global attention. Industries, being a major consumer of natural resources and also a significant contributor to increasing pollution and waste generation, have a key role in addressing current and emerging environmental issues. Lack in fulfillment of this role has adversely affected the overall image of the industries.

The key to industrial transformation lies in achieving sustainability by working in harmony with the environment and society. This will require development of expertise among industrial professionals to deal with upcoming environmental challenges along with professional skills for stakeholder engagement. Centre for Science and Environment (CSE) recognizes this need of the hour and is conducting a four-day training programme in November, 2019 at its exclusive training centre at Alwar, Rajasthan to provide hands-on experience to industries.

The takeaway from this training programme includes improved understanding on:

1. Environmental Laws for better compliance;
2. Pollution assessment of various sources (unit operation and process wise)
3. Performance evaluation of pollution control devices
4. Protocol for stack monitoring with on-site demonstration
5. Issues and Challenges with Continuous Emission Monitoring System
6. Introduction to ISO 50001: A tool for sustainable energy management
7. Protocol for conducting environmental audit for improving resource management;
8. Public engagement and outreach

COURSE FEES
Rs 23,000/- per participant for Double occupancy accomodation
Rs 30,000/- per participant for single occupancy accomodation
(Fees includes training material, boarding and lodging, travel from New Delhi to AAETI and back)

COURSE DURATION
November 12-15, 2019

COURSE VENUE
Anil Agarwal Environment Training Institute (AAETI), Nimli, Rajasthan

LAST DATE FOR APPLYING
October 31, 2019

OPEN FOR
Environment Managers; Production Managers; Health Safety and Environment Experts; Environment Auditors; Environment Consultants, Environment Engineers, Urban local bodies, NGO's

FOR REGISTRATIONS mail at: ishita.garg@cseindia.org

For further queries contact: Ishita Garg, Programme Officer
Centre for Science and Environment
41, Tughlakabad Institutional Area, New Delhi-110062
Ph: 91-11-40616000 (Ext. 251) Email: ishita.garg@cseindia.org
Mobile: +91-9899676011 Website: www.cseindia.org

SPECIAL OFFERS:

10% early bird discount valid till 20 September, 2019

20% off for group participation (2 or more) from the same organization

जल की बर्बादी

पानी के बिना जिंदगी की कल्पना नहीं की जा सकती। हमारे देश में बड़ी संख्या में लोग पानी के संकट से जूझ रहे हैं, वहीं ऐसे भी लोग हैं जो जाने–अनजाने बड़ी मात्रा में इसकी बर्बादी भी कर देते हैं। क्या आप जानते हैं कि हम प्रतिदिन कितना पानी बर्बाद करते हैं? आइए, आंकड़ों की मदद से इस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास करें और प्रण लें कि हम इस बर्बादी को रोकेंगे

45 लीटर

पानी एक भारतीय प्रतिदिन बर्बाद करता है

20-60 लीटर

पानी हम हाथ धोते, ब्रश करते और बर्तन साफ करते वक्त नल खुला छोड़ देने की आदत के कारण बर्बाद कर देते हैं।

25 लीटर

पानी हर बार उस समय बर्बाद हो जाता है जब हम नल खुला छोड़कर ब्रश करते हैं। आमतौर पर एक नल से प्रति मिनट 5 लीटर पानी निकलता है और अगर हम नल खुला छोड़कर 5 मिनट तक ब्रश करते हैं तो 25 लीटर पानी बर्बाद हो जाता है।

15-25 लीटर

पानी हाथ धोते समय नल खुला छोड़ देने से प्रतिदिन बह जाता है। आमतौर पर एक भारतीय रोज 3 से 5 बार हाथ धोता है और हाथ धोने में कम से कम एक मिनट लगाता है।

150 लीटर

पानी 15 मिनट तक शॉवर में नहाने के दौरान बर्बाद हो जाता है। शॉवर में प्रति मिनट 10 लीटर पानी निकलता है। अधिक समय तक शॉवर में नहाने का मतलब है बड़ी मात्रा में पानी की बर्बादी।

60-70 लीटर

पानी प्रतिदिन शौचालय में एक व्यक्ति द्वारा प्लश करने से बह जाता है। एक बार प्लश करने पर कम से कम 10 लीटर पानी की बर्बादी होती है। औसतन एक व्यक्ति दिन में 6 से 7 बार शौचालय का इस्तेमाल करता है।

3.6 लीटर

पानी एक दिन में तब बेकार चला जाता है जब एक व्यक्ति पीने के साफ पानी के लिए आरओ का इस्तेमाल करता है। आरओ के एक लीटर साफ पानी के लिए 3 से 4 लीटर पानी की बर्बादी होती है। एक व्यक्ति प्रतिदिन औसतन 1.2 लीटर पानी पीता है।

50 लीटर

पानी शेविंग के दौरान नल खुला छोड़ देने से बह जाता है। आमतौर पर एक व्यक्ति शेविंग करने में 10 मिनट का वक्त लगाता है।

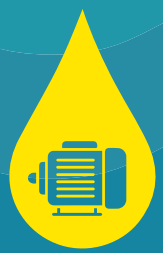

120 लीटर

पानी की बर्बादी उस वक्त हो जाती है जब टंकी भरने के बाद भी रोज 15 मिनट तक मोटर चलती रहती है। टंकी से बहकर यह पानी बर्बाद हो जाता है। एक मिनट में टंकी में 8 लीटर पानी जाता है। 15 मिनट टंकी से पानी बहने का मतलब है 120 लीटर पानी की बर्बादी।

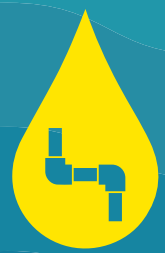

20-25 प्रतिशत

पानी शहरों में ट्रांसमिशन और वितरण के दौरान बर्बाद हो जाता है। यह पानी पाइपलाइन के जरिए घरों, दफ्तरों और रेस्तरां तक पहुंचता है। पानी की बर्बादी प्रवाह और पाइप की मोटाई पर निर्भर करती है। पाइप जितना मोटा होगा, लीकेज से पानी की बर्बादी का खतरा उतना अधिक होगा।

पर्यावरण रक्षक धुरचुक

अंतरिक्ष यात्रियों से लेकर आम लोग तक ठंडे इलाकों में पाए जाने वाले धुरचुक के गुणों से वाकिफ हैं

चैतन्य चंदन

इस साल गर्मियों में हिमाचल प्रदेश के पालमपुर जाना हुआ। वहां एक नए तरह की चाय की चुस्की लेने का मौका मिला। आम चाय से बिलकुल अलग स्वाद वाली इस चाय को वहां धुरचुक कहा जाता है। धुरचुक भारत के सबसे उच्च हिमालय वाले क्षेत्र लद्दाख में पाई जाने वाली झाड़ी में लगने वाला छोटी गोलियों के आकार का फल है। नारंगी रंग के इस फल का स्वाद अमूमन खट्टा होता है और इसे अंग्रेजी में हिमालयन बेरी अथवा सीबकथोर्न के नाम से जाना जाता है।

धुरचुक की झाड़ियां बेहद ठंडे मौसम में भी जीवित रहती हैं और समुद्र तल से 12,000 फीट की ऊंचाई पर भी इसे उगाया जा सकता है। धुरचुक की झाड़ियों का जीवन काल 100-150 वर्षों तक होता है। धुरचुक एक प्राचीन फल है। इसकी उत्पत्ति यूरोप, पाकिस्तान सहित मध्य एशिया में मानी जाती है। ग्रीस में तांग साम्राज्य (618-708 ईस्वी) के दौरान इस फल का उपयोग औषधि के तौर पर किया जाता था। इसका उल्लेख प्राचीन ग्रीक साहित्य और तिब्बती औषधि संहिता में भी मिलता है।

वर्ष 2007 में लिपिनकोट विलियम्स एंड विल्किंस द्वारा प्रकाशित पुस्तक *"द हेल्थ प्रोफेशनल्स गाइड टु डायटरी सप्लीमेंट्स"* के अनुसार, प्राचीन ग्रीक सभ्यता में धुरचुक का इस्तेमाल वजन की स्थिरता, त्वचा सबंधी रोगों के उपचार और शारीरिक कमजोरी को दूर करने के

विकास चौधरी / सीएसई

धुरचुक चाय के नियमित सेवन से वजन नियंत्रित रहता है

लिए किया जाता था। वर्तमान में इसे उत्तरी और दक्षिण अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, रूस और चीन में वाणिज्यिक तौर पर उगाया जाता है। इनमें से चीन और रूस धुरचुक का सबसे बड़े उत्पादक देश हैं। भारत में धुरचुक मुख्य रूप से हिमालयी क्षेत्र लद्दाख, उत्तराखंड में कुमाऊं-गढ़वाल, हिमाचल प्रदेश में लाहौल-स्पीति, किन्नौर, सिक्किम और अरुणाचल प्रदेश के बर्फीले जंगलों में पाया जाता है। अकेले लद्दाख में धुरचुक की झाड़ियां करीब 30,000 हेक्टेयर क्षेत्र में फैली हैं। लद्दाख के कुछ समुदाय धुरचुक को बेचकर थोड़ी बहुत आय अर्जित कर लेते हैं। हालांकि भारत में इसके वाणिज्यिक उत्पादन और विपणन के लिए कोई खास प्रयास अभी तक नहीं किए गए हैं।

धुरचुक का वानस्पतिक नाम *हिप्पोफे राम्नोइड्स* है। *हिप्पोफे* लैटिन भाषा के दो शब्दों *हिप्पो* और *फओस* को जोड़कर बना है। *हिप्पो* का अर्थ घोड़ा और *फओस* का अर्थ चमकना होता है। धुरचुक के इस नामकरण के पीछे एक बेहद रोचक कहानी है। दरअसल, जब चंगेज खां की सेना लद्दाख से गुजर रही थी, तब उन्होंने बुरी तरह से घायल कुछ घोड़ों को वहीं छोड़ दिया। जब वह वापस लौटा, उसने उन्हीं घोड़ों को पहले से अधिक तंदुरुस्त और चमकीली त्वचा वाला पाया। चंगेज खां को स्थानीय लोगों ने बताया कि ये घोड़े जीवित रहने के लिए धुरचुक की झाड़ियां और फल खाते रहे। परिणामस्वरूप घोड़े स्वस्थ हो गए। चंगेज खां धुरचुक की इस खूबी को जानकर हैरान रह गया और अपने सैनिकों की शारीरिक शक्ति को बढ़ाने के लिए धुरचुक खिलाना शुरू कर दिया।

धुरचुक की झाड़ियां प्रदूषण नियंत्रण में भी सहायक है। यह खदानों से निकले कचरे से होने वाले क्षरण से मिट्टी को बचाता है। धुरचुक की झाड़ियों में प्राकृतिक तौर पर कीड़े नहीं लगते, इसलिए इसके उत्पादन में कीटनाशकों की जरूरत नहीं पड़ती। साथ ही धुरचुक की झाड़ियों की जड़ें मिट्टी को बांधे रखती है और भू-स्खलन से बचाती है। यही वजह है कि चीन ने धुरचुक के बाग नदियों के किनारे लगाए हैं। यह भूमि को मरुस्थलीकरण से भी बचाता है।

शीत युद्ध के दौरान रूस और पूर्वी जर्मनी के बागवानी विशेषज्ञों ने धुरचुक की एक नई प्रजाति विकसित की, जो उस समय उपलब्ध धुरचुक के फल से न सिर्फ आकार में बड़ा था, बल्कि उसमें अधिक पोषक तत्व भी मौजूद थे। रूस के अंतरिक्ष यात्री धुरचुक के बीजों से निकले तेल का इस्तेमाल अपनी त्वचा को हानिकारक विकिरणों से बचाने के लिए करते हैं। वहीं 20 वर्षों के लगातार प्रयोगों ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में भी धुरचुक की उगाने में सफलता दिला दी। धुरचुक का जूस अमेरिका के साथ ही चीन में काफी लोकप्रिय है और हेल्थ फूड स्टोर में आसानी से मिलता है। 1998 में सिओल ओलिंपिक में धुरचुक का जूस चीन की टीम के लिए आधिकारिक पेय घोषित किया गया था।

भोजन और औषधि के अलावा धुरचुक का इस्तेमाल सौंदर्य प्रसाधनों के निर्माण में भी किया जाता है। पिछले कुछ सालों में दुनियाभर के सौंदर्य उद्योग में धुरचुक का इस्तेमाल एंटी-एजिंग क्रीम और तेल बनाने में बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है। भारत में धुरचुक के वाणिज्यिक उत्पादन और विपणन की संभावना को देखते हुए केंद्रीय पर्यावरण और वन मंत्रालय ने रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन के साथ मिलकर लाहौल और स्पीति में बड़े पैमाने पर धुरचुक के उत्पादन की योजना बनाई है। यह कार्यक्रम प्रधानमंत्री ग्रीन इंडिया मिशन के तहत शुरू किया गया है, जिसमें वर्ष 2020 तक धुरचुक से जूस, तेल और कैप्सूल बनाकर दुनिया के अन्य देशों में भी निर्यात करने की योजना है।

औषधीय गुण

धुरचुक को सुपर फूड के रूप में भी पहचान मिलनी शुरू हो गई है। दरअसल, धुरचुक में प्रचुर मात्रा में 190 प्रकार के बायोएक्टिव यौगिक, 60 प्रकार के एंटीऑक्सिडेंट, 20 प्रकार के खनिज, एमिनो अम्ल के साथ ही विटामिन बी, के, सी, ए और ई पाए जाते हैं। यही वजह है कि प्राचीन ग्रीक सभ्यता में धुरचुक का इस्तेमाल औषधि के तौर पर किया जाता था। तिब्बत में औषधि की प्रमुख किताब *"हु सिबु यिदियां"* के 158 अध्यायों में से 30 अध्याय सिर्फ धुरचुक के गुण-दोषों पर ही आधारित हैं। इससे पता चलता है कि तिब्बती धुरचुक का इस्तेमाल उपचार के लिए बड़े पैमाने पर करते थे। अप्रैल 2007 में प्रकाशित पुस्तक *"इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स"* के अनुसार, धुरचुक से बने गाढ़ा पेय का उपयोग पारंपरिक तौर पर दस्त, पेट दर्द, पेट का अल्सर और त्वचा संबंधी रोगों के उपचार के लिए किया जाता रहा है।

धुरचुक के औषधीय गुणों की पुष्टि वैज्ञानिक अनुसंधानों ने भी की है। *फितोतेरापिया* नामक जर्नल में वर्ष 2002 में प्रकाशित एक शोध के अनुसार, धुरचुक के बीज और उससे निकलने वाला तेल गैस्ट्रिक अल्सर के उपचार में कारगर है। वर्ष 1999 में द *जर्नल ऑफ न्यूट्रिशनल बायोकेमिस्ट्री* में प्रकाशित एक शोध के अनुसार, धुरचुक का सेवन त्वचा संबंधी रोगों के उपचार में सहायक है। वहीं *वर्ल्ड जर्नल ऑफ गैस्ट्रोइंट्रोलोजी* में वर्ष 2003 में प्रकाशित अध्ययन बताता है कि धुरचुक यकृत संबंधी रोगों के इलाज में कारगर है।

व्यंजन

धुरचुक चाय

सामग्री (1 कप के लिए)

धुरचुक (सूखा) : 4 चम्मच

पानी : 2 कप

दालचीनी का टुकड़ा : 1 इंच

नीबू का रस : 1 छोटा चम्मच

शहद : 2 छोटे चम्मच

विधि: एक पैन में 2 कप पानी लेकर उसमें सूखा धुरचुक और दालचीनी का टुकड़ा डालकर तब तक उबालें, जब तक पानी सूखकर आधा यानी एक कप न हो जाए। अब इसे कप में छानकर इसमें नीबू का रस और शहद मिलाएं। लीजिए तैयार है स्वास्थ्यवर्धक धुरचुक चाय।

कहां मिलेगा

पुस्तक

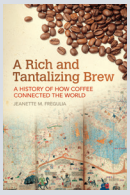

अ रिच एंड टैंटलायजिंग ब्रू: अ हिस्ट्री ऑफ हाउ कॉफी कनेक्टेड द वर्ल्ड

लेखक: जीनेट एम फ्रेगलिया
प्रकाशक: यूनिवर्सिटी ऑफ आर्कन्सॉ प्रेस

पृष्ठ: 193 | **मूल्य:** $24.95

इस किताब में कॉफी के इतिहास को इसके उत्पादन की शुरुआत से बताया गया है। किताब के अनुसार कॉफी की खेती सबसे पहले इथियोपिया और यमन के उच्च क्षेत्रों में निजी उपभोग के लिए किया गया था। बाद में मुस्लिम देशों में सार्वजनिक उपभोग की वस्तु के तौर पर इसे कॉफी हाउस में बेचा जाने लगा। कॉफी भूमध्यसागर के रास्ते इटली, यूरोप के अन्य भागों से गुजरते हुए भारत और अमेरिका में पहुंची। इस सफर के दौरान कॉफी को हर पड़ाव पर कई प्रकार के बदलावों और आलोचनाओं से भी से दो-चार होना पड़ा।

गरीबी दूर होगी बशर्ते...

व्यावसायिक समूह के जरिए कर चोरी के कारण सरकारों को 200 अरब डॉलर से 600 अरब डॉलर तक का नुकसान हो सकता है

रिचर्ड महापात्रा

भारतीय संविधान से अनुच्छेद 370 हटाने के ऐतिहासिक निर्णय से जुड़ी खबरों के बावजूद अखबार के पहले पन्ने आर्थिक मंदी की उभरती हुई खबरों की उपेक्षा नहीं कर सकते। स्थिति यह है कि कश्मीर को लेकर चिंताकुल प्रधानमंत्री और उनकी कैबिनेट व्यावसायिक दिग्गजों के साथ बैठकें कर रही है। वित्त मंत्रालय ने भी प्रधानमंत्री कार्यालय को अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए सुधारों की एक छोटी सूची सौंपी है। जल्द ही व्यापारिक घरानों के लिए करों में बड़ी छूट की खबरें आपको समाचारों में पढ़ने को मिलेंगी।

अर्थव्यवस्था को बचाने की रणनीति बेहद सुस्त और चौंकाने वाली है। हमेशा ग्रामीण आबादी के बीच खपत को बढ़ाने की ओर ध्यान दिया जाता है। इसका मतलब है कि लोगों के हाथ में पैसा हो ताकि वे खर्च कर सकें। इससे बिक्री बढ़ेगी और व्यावसायिक घरानों को लाभ होगा। जितना ज्यादा लाभ होगा उतना ही ज्यादा सरकार को कर मिलेगा। हम जानते हैं कि सरकार कर को कल्याणकारी कार्यक्रमों के लिए खर्च करती है। इतना ही नहीं इससे ग्रामीण आबादी के बीच गरीबी भी कम होगी।

तारिक अजीज / सीएसई

लेकिन सवाल यही है कि व्यावसायिक घराने क्या अपनी आय के मुताबिक ही कर का भुगतान करते हैं? हम सभी कर मुक्त क्षेत्र (टैक्स हेवेन) के बारे में जानते हैं। ऐसे देश या क्षेत्र हैं जहां व्यावसायिक घराने अपना संचालन करते हैं या फिर वहां पंजीकृत हैं लेकिन वे उस स्थान पर कर चुकाने से मुक्त हैं। उदाहरण के तौर पर एक कंपनी यदि भारत में अपना व्यवसाय कर रही है और उसका पंजीकरण कर मुक्त क्षेत्र में है तो वह न ही लाभ और न ही कर में अपनी कोई हिस्सा देगी। दूसरी चीज है कि व्यावसायिक घराने समूहिक आर्थिक प्रदर्शन के आधार पर ही कर चुकाते हैं। इसमें कोई एक प्रतिष्ठान समूह में शामिल नहीं होता। हम इसे कर चोरी (टैक्स एवॉइडेंस) ही कहते हैं।

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) ने अनुमान लगाया है कि व्यावसायिक समूह के जरिए इस कर चोरी के कारण सरकारों को 200 अरब डॉलर से 600 अरब डॉलर तक का वैश्विक राजस्व नुकसान हो सकता है। नुकसान का यह आकलन विकसित और विकासशील दोनों देशों के लिए है। थिंक टैंक "द टैक्स जस्टिस नेटवर्क" के अनुसार राजस्व का यह नुकसान 500 अरब डॉलर के आसपास होगा। वहीं, कम आय वाले देशों को करीब 200 अरब डॉलर का नुकसान हो रहा है।

पूरी दुनिया में 65 करोड़ लोग 1.90 डॉलर प्रतिदिन की आय यानी अंतरराष्ट्रीय गरीबी रेखा से नीचे गुजर-बसर कर रहे हैं। यदि 500 अरब डॉलर में से दुनिया के प्रत्येक गरीब में दो डॉलर बांट दिया जाएं तो इससे वैश्विक गरीबी दूर हो सकती है। भले ही वह कुछ दिनों की हो या फिर कुछ हफ्तों की।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के जरिए की जा रही कर चोरी की विषमता को कम करने के लिए वैश्विक स्तर पर बातचीत जारी है। पिछली गर्मी में आर्थिक समन्वय और विकास संगठन (ओईसीडी) ने इसकी कटौती की रणनीति पर बातचीत की थी। ओईसीडी के चर्चित और प्रस्तावित बिंदुओं में कहा गया है कि इसके लिए बंटवारे का दृष्टिकोण अपनाना होगा। एक-एक कंपनी के बजाए बहुराष्ट्रीय समूह के स्तर पर लाभ का आकलन करना होगा। वहीं, कर का बंटवारा प्रत्येक इकाई की वास्तविक आर्थिक गतिविधि के अनुपात में संचालन करने वाले देशों के बीच करना होगा। ओईसीडी ने अपनी इस योजना को "बेस इरोजन एंड प्रॉफिट शिफ्टिंग एक्शन प्लान" नाम दिया था। यह योजना धरातल पर आ चुकी है। 2013-15 में इस योजना के तहत लाभ में कमी का लक्ष्य तय किया था। इस वक्त कई कंपनियां अपनी आर्थिक गतिविधि और लाभ के आंकड़े देशों में बताती हैं। इन आंकड़ों से विषम कर साझेदारी का पता चलता है।

जी-24 देशों के साथ भारत भी इस बात का समर्थन कर रहा है कि कंपनियों की वास्तविक लोकेशन, रोजगार और बिक्री के आधार पर उनसे कर वसूला जाए। हालांकि यह कहना जितना आसान है, करना उतना ही मुश्किल।

SANi-KiT

PREPARING A CITY SANITATION PLAN

A web-based tool for preparing city sanitation plans

For queries contact water@cseindia.org

kindly visit cseindia.org or scan the QR code

MOUNT

MOUNT is an online aggregator platform disseminating knowledge on sustainable technologies and good practices for wastewater and faecal sludge management.

Share your technology or case study on **water@cseindia.org**

Explore on www.cseindia.ord/mount/home or scan the QR code

R.N.I. NO. DELHIN/2018/76697 POSTAL REGN. NO. DL(S)-17/3536/2019-21
Licensed to Post at Lodhi Road HO, New Delhi-110003.
Published on 27th of previous month. POSTED ON: 1-2 of the same month. Total pages: 60

CSE

NEW ARRIVAL

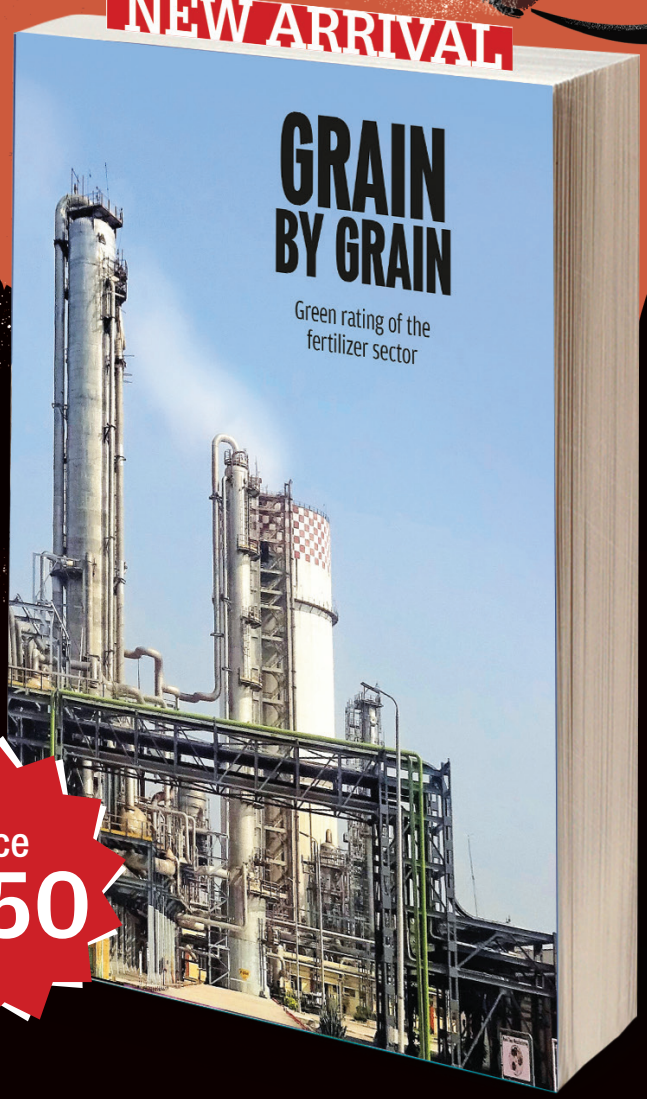

Price
₹850

This is the first ever in depth green rating of its kind, of the fertilizer sector.

Please place your order online by visiting us at http://csestore.cse.org.in/ or mail your order to us along with a Cheque for the required amount, drawn in favour of Centre for Science and Environment addressed to Centre for Science and Environment,41 Tughlakabad Institutional Area, New Delhi - 110062

Write to us if you have any queries, addressed to Ramachandran at: rchandran@cseindia.org